देशीय और विदेशीय नव वर्ष में अंतर

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा | **एक जनवरी**

सूर्योदय

मध्यरात्री

प्रकृति का नूतनत्व

प्रकृति की शुष्कता

सभी प्राणी जागते हैं

सभी प्राणी सोते हैं

ओ३म्
वैदिक-पर्व-पद्धति
नववर्षेष्टि
लेखक
उदयनाचार्य

ओ३म्

वैदिक-पर्व-पद्धति

नववर्षेष्टि

लेखक

उदयनाचार्यः

संस्थापक, अध्यक्ष

निगमनीडम् - वेदगुरुकुलम्

(०९४४०७२१९५८)

प्रकाशक

वेदधर्म-प्रचार-समिति

निगमनीडम् - वेदगुरुकुलम्

महर्षि दयानन्द मार्ग

ग्रा० पिडिचेड, मं० गज्वेल

जि०मेदक (तेलंगाणा)५०२२७८

प्रथम संस्करण
फाल्गुन २०७२
०१.०३.२०१५
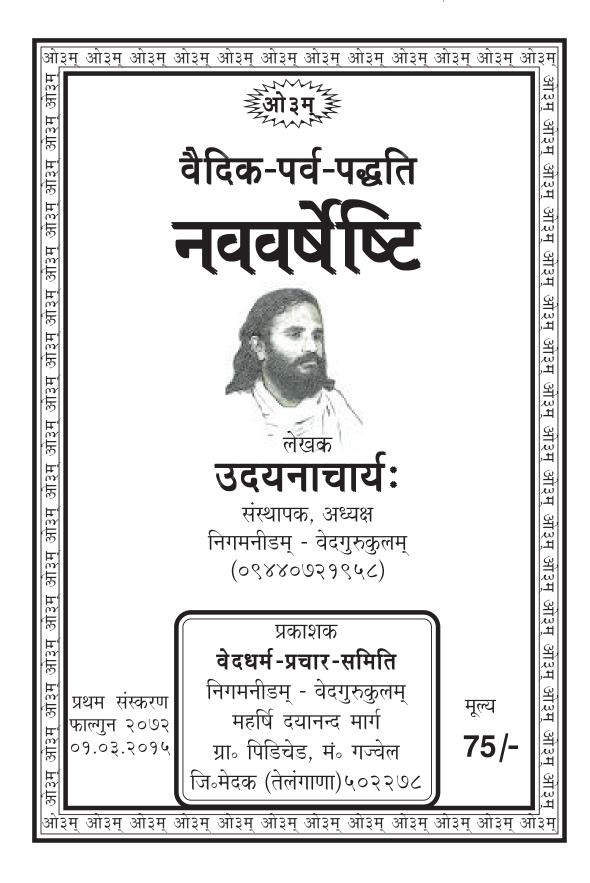
मूल्य
75/-

वैदिक पर्वपद्धति– **नववर्षेष्टि :**
Vaidika Parvapaddhati Navavarsheshti

प्रतियाँ :1000
प्राप्ति स्थानः-

१. निगम-नीडम् (वेदगुरुकुलम्), महर्षि दयानन्द मार्ग , पिडिचेड, गज्वेल, मेदक - 502278 (तेलंगाणा)
२. मुरली ब्रह्मचारी, आर्य निलयम्, 9-2-586, जूलम्मा मन्दिर के सामने, रेजिमेन्टल बाजार, सिकिन्द्राबाद -25 (09441033702)
३. आर्य समाज, सीताफल मण्डी, सिकिन्द्राबाद - 500061
४. विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८, नई सड़क दिल्ली- ११०००६
५. पतञ्जलि आयुर्वेद आरोग्य केन्द्रम्, श्रीराम कालोनी, पुराना बान्सुवाडा रोड, बान्सुवाडा - 503187 (09494026684)
६. श्री गोपाल बुक हौस, 3-3-860, सुल्तान बाजार आर्य समाज के सामने, काचिगूड़ा, हैदराबाद -27 (040-24658101)

अक्षर संयोजक & मुखपृष्ठ का चित्रीकरण (डी.टी.पी)
ब्रह्मचारी वेदमित्र चैतन्य, ब्रह्मचारी धर्मेन्द्र चैतन्य
निगमनीडम्-वेदगुरुकुलम्, पिडिचेड, गज्वेल, मेदक

मुद्रण : विक्रान्त प्रिंट हाउज, 12-11-735, वारसिगूड X रोड़, सिकिन्द्राबाद-500061. फोन नं. 9705085608

प्रकाशकीय

''गतानुगतिको लोको न लोको पारमार्थिकः'' इसका अर्थ यह है कि सभी मनुष्य एक दूसरे को देखकर अपना अनुसरणात्मक व्यवहार मात्र करते हैं, इससे बढ़कर इस लोक में प्राप्त करने योग्य कोई विशेष परमार्थ नहीं है। खाना-पीना, बोल-चाल, कमाना, विवाह करना, सन्तानोत्पत्ति आदि-आदि सभी कार्य अनुकरण से ही होते रहते हैं। इस प्रकार के जन्म को शास्त्रकारों ने पशुतुल्य माना है। यह कोई मानवोचित जीवन का विधान नहीं है। **मननाद् मनुष्यः** विचार कर विवेक से कार्य करने वाला ही मानव कहलाता है। अनुकरण मनुष्य को आवश्यक तो है, पर अन्धानुकरण उचित नहीं है। अतः परिणाम को विचार कर ही आगे बढ़ना चाहिए, अपना व्यवहार करना चाहिए। हम जिनका अनुकरण करते हैं, उनके जीवन की सफलता व निष्फलता पर भी हमें विचार करना चाहिए। तभी मनुष्य सजग होकर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है, अन्यथा नहीं।

मनुष्य धार्मिक कृत्य व पर्वों (त्योंहारों) को भी दूसरों का अनुसरण करते हुए ही मनाता है। पर उनके इतिवृत्त (इतिहास), महत्वादि को नहीं जानता। पर्व किसे कहते है? उन्हें क्यों मनाना चाहिए? उनका उद्देश्य क्या है? उनका स्वरूप क्या है? अर्थात् पर्वों को कैसे, किस पद्धति से मनाना चाहिए? उनके विधिवत् मनाने का प्रयोजन क्या है? उसको विपरीत मनाने से क्या हानियाँ होगीं? हम जिन्हें पर्वों के रूप में इस समय मना रहे हैं क्या ये प्राचीन हैं? या नवीन (कल्पित) हैं? आज के पर्व क्या वेदादि शास्त्रों के अनुकूल हैं? प्राचीन काल में ऋषि-मुनि व राजा-महाराजादि पर्वों को किस रूप में मनाये होंगे? इत्यादि विषयों को

जानकर उस वैदिक परम्परा का अनुकरण करेंगे तो मानव समाज को महान् लाभ सिद्ध होगा और सुख-शान्ति विराजमान होंगी। इसी उद्देश्य से यह ''वैदिक-पर्व-पद्धति''(प्रथम भाग- नववर्षेष्टि) लिखी गयी है। आशा है सुधी पाठक इसे ग्रहण करेंगे।

कृतज्ञता- समादरणीय वैदिक विद्वान् डॉ. श्री विजयवीर विद्यालंकार जी ने अपना अमूल्य समय निकाल कर इस ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़ा और ''समीक्षण'' के शीर्षक से अपनी सम्मति व अभिप्रायों को ज्ञापित करते हुए शुभकामनाएँ अभिव्यक्त किया। इसके लिए मैं उनका बहुत ही आभारी हूँ। एतदर्थ पूज्य पण्डित जी को बहुत-बहुत हार्दिक धन्यवाद। इस ग्रन्थ का अक्षर संयोजन (टाईपिंग) ब्र. वेदमित्र चैतन्य ने और मुखपृष्ठ का चित्रीकरण ब्र. धर्मेन्द्र चैतन्य ने बड़े मनोयोग एवं धैर्यपूर्वक आकर्षणीय तथा शुद्धता से सम्पन्न किया। इसका शुद्धीकरण (प्रूफरीडिंग) ब्र. सत्यश्रवा चैतन्यादियों ने ध्यानपूर्वक किया। मदन्तेवासी ये विद्यार्थी इसी प्रकार शास्त्रीय योग्यता के साथ विभिन्न कलाओं में निष्णात हों, एतदर्थ परमेश्वर इन्हें पूर्ण सामर्थ्य प्रदान करें, यही इनके लिए मेरे आशीर्भाव हैं। इस ग्रन्थ के मुद्रण कार्य को वैदिक धर्मानुरागी कर्त्तव्यनिष्ठ श्री कट्टा दामोदरा चारी जी ने सहर्ष स्वीकार कर हमें सर्वथा निश्चिन्त कर दिया। इस के लिए इन्हें भी मैं हृदय पूर्वक धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

- उदयनाचार्य

विषय सूची

समीक्षण

सुप्रसिद्ध सुधी विद्वान् श्री पं. उदयनाचार्य कृत वैदिक-पर्व-पद्धति नववर्षेष्टि विभिन्न शीर्षकों में विभक्त अनमोल कृति है। प्रस्तुत पुस्तक के प्रारम्भ में पर्व- मीमांसा (वेद कालीन पर्वपद्धति) के अन्तर्गत पर्वशब्द, पर्व-यज्ञ तथा पर्व-पद्धति के वेद-मन्त्रों की संगति के साथ विशद व्याख्या की गयी है।

लेखक का अभिमत है कि भारतदेश की गरिमा का कारण है वेद और वैदिक परम्परा। योगदर्शन २.१८ का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं कि परमात्मा ने भोग और अपवर्ग के उद्देश्य से ही इस सृष्टि की रचना की थी। इस उद्देश्य की पूर्ति वेदज्ञान से ही होती है। वेद और वैदिक वाङ्मय में भोग और मोक्ष का समन्वयात्मक मार्ग प्रदर्शित है। भारतीय समाज की सामान्य जीवन शैली वैदिक संस्कृति से अनस्यूत है और विशिष्ट अवसरों पर विशेष आयोजन हर्षोल्लास पूर्वक मनाये जाते हैं, जिन्हें 'पर्व' कहा जाता है। कोषकारों ने पर्वशब्द के १२ (बारह) अर्थ दिये हैं। इस पुस्तक में वेद, ब्राह्मणग्रन्थ, निरुक्त, निघण्टु, महाभाष्य, न्यायदर्शन, कात्यायन श्रौतसूत्र, शांखायन श्रौतसूत्र, आश्वलायन श्रौतसूत्र, तैत्तरीय संहिता, मैत्रायणी संहिता, जैमिनीय ब्राह्मण, मनुस्मृति आदि ग्रन्थों के प्रमाणों के आधार पर पर्व और पर्व-यज्ञों के अनुष्ठान विषयक चर्चा की गयी है। तदन्तर व्रत और उपवास शब्दों का वास्तविक अर्थ और उनकी समीचीनता पर भी विचार किया गया है। यथा-

उप समीपे यो वासो जीवात्मपरमात्मनोः ।
उपवासः स विज्ञेयो न तु कायस्य शोषणम्॥(वराहोप०२.३९)

समाज में प्रचलित शुभ-अशुभ पर संक्षेपतः विचार प्रस्तुत करते हुए लेखक कहते हैं- 'पर्व-दिनों को प्रायः सभी लोग शुभदिन (सुदिन) ही मानते हैं। पर वार, तिथि, मुहूर्त, नक्षत्र, ग्रह, राशि आदियों में से कुछ को शुभ एवं कुछ को अशुभ मानते हैं और इन्हीं के कारण शुभ-अशुभ वा सुख-दुःख प्राप्त होते हैं, ऐसी मान्यता रखते हैं। यह सब पौराणिक युग में लिखित फलित ज्योतिष के ग्रन्थों का दुष्प्रभाव है, जो कि सर्वथा कल्पित, निराधार और अविवेक पूर्ण है'।

लेखक ने सप्रमाण स्पष्ट किया है कि वेद और आर्षग्रन्थों का दृष्टिकोण इससे सर्वथा भिन्न है, जो कि त्रैकालिक सत्य है। वेद का सिद्धान्त है कि शुभ-अशुभ, भाग्य आदि सभी मनुष्य के हाथ में हैं अर्थात् उसके कर्मों के आधीन हैं - **कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः** (अथर्व० ७.५०.८)। इसके बाद जीवन के प्रत्येक दिन को पर्वमय कैसे बनाएँ इसे वेदमन्त्रों के माध्यम से दर्शाया गया है।

प्रमाण विशेषज्ञ लेखक ने शतपथ ब्राह्मण के आधिकारिक विद्वान् मेरे वेदगुरु स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती (पं. बुद्धदेव विद्यालंकार) को अविकल उद्धृत करते हुए बताया है कि यथार्थ में शास्त्रीय दृष्टिकोण से संवत्सर भर के सभी पर्वों को हम अपने निजी जीवन में कैसे मनाएँ या उतारें। अध्याय के अन्त में पर्व की सार्थकता का बोध कराने वाले मन्त्र को उद्धृत कर लेखक अपने विचारों को विराम देते हैं।

यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः।
सर्वं तदेषां समृधेव पर्व यत्सुवाचो वदथनाध्यप्सु ॥

(ऋ० ७.१०३.५)

अर्थात् वेदज्ञान का प्रचार-प्रसार करना प्रत्येक मनुष्य का पर्व (पालन करने योग्य कर्तव्य) है।

नववर्षेष्टि शीर्षक के अन्तर्गत नवसंवत्सरोत्सव (नवसंवत्सरारम्भ का पर्व) चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को मनाने निमित्त विशिष्ट मन्त्रों से आहुतियों

का निर्देश दिया गया है ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सभी मनुष्यों के लिए वेदोक्त ऋतुचर्या का निर्देश दिया है, जिसे प्रस्तुत पुस्तक में उद्धृत किया गया है । साथ ही वसन्त ऋतु, ग्रीष्म ऋतु, वर्षा ऋतु, शरद् ऋतु तथा हेमन्त ऋतु में रहन-सहन कैसा हो, इसे वेदानुसार बताया गया है । दिनचर्या के अन्तर्गत जीवनोपयोगी बातों को दर्शाते हुए जीवन की सफलता का मूलमन्त्र वेदानुसार बताया गया है । ध्यातव्य है कि ऋषि दयानन्द कृत संस्कार विधि के नामकरण संस्कार के अन्त में निर्दिष्ट आशीर्वचन में भी यही कामना की गयी है कि दिन-रात, पक्ष, मास, ऋतुएँ और संवत्सर (वर्ष) वार्धक्य तक सुखपूर्वक वृद्धि को धारण करें- **ओं स त्वाह्ने परिददात्वहस्त्वा रात्र्यै परिददातु रात्रिस्त्वाहोरात्राभ्यां परिददात्वहोरात्रौ त्वार्द्धमासेभ्यः परिदत्तामर्द्धमासास्त्वा मासेभ्यः परिददतु मासास्त्वर्तुभ्यः परिददत्वृतवस्त्वा संवत्सराय परिददतु संवत्सरस्त्वायुषे जरायै परिददातु, असौ ।।**

'नववर्ष का हर्ष कब, कैसे और क्यों' के अन्तर्गत बहुज्ञ लेखक ने पाश्चात्य वर्षारम्भ १-जनवरी से मानना असंगत सिद्ध करने के लिए यूरोपीय मान्यताओं का विस्तार से परिचय दिया है । इसके विपरीत यथार्थ नूतन संवत्सर पर तर्क सम्मत विचार प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट किया गया है कि नयावर्ष का अर्थ है सृष्टि का जन्मदिन । उसी दिन को नयावर्ष आरम्भ होता है । यह सृष्टि उत्पन्न होकर अभी तक (२०७१ विक्रम संवत्, मार्च २०१४ तक) १,९७,२९,४९,११५ (एक अरब सत्तानवे करोड़ उन्तीस लाख उन्तालीस हजार एक सौ पन्द्रह) वर्ष बीत गये ।

वेदादि के अनुसार वसन्त ऋतु के आरम्भ को ही संवत्सर (कालगणना) आरम्भ होने का उल्लेख है- **"मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू इषश्चोर्जश्च शारदावृतू सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतु तपश्च तपस्यश्च**

शैशिरावृतू (तैत्तरीय संहिता ४.४.११.१,१.४.१४ अपि च द्र. यजु० १३.२५,१४-६,१५,१६,२७,१५.५७)'' यहाँ स्पष्ट रूप से वसन्तादि छः ऋतुओं का वर्णन है और प्रत्येक ऋतु दो-दो मासों में विभाजित हैं । स्पष्ट है कि वर्ष वसन्त ऋतु से वा मधुमास से आरम्भ होता है । यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि सृष्टि के आदि में प्रादुर्भूत वेदों में ही बारह मास एवं छः ऋतुओं का वर्णन है ।

इसी प्रकार एक वर्ष में (१२ मास ×३० दिन) =३६० दिन होते हैं। इसका भी वर्णन वेदमन्त्रों में है । यथा -

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः... (अथर्व०१.१.१) यहाँ 'त्रिषप्ताः' शब्द का अर्थ इस प्रकार है -

१. तीन से सात तक की विषम संख्याओं का योग-३+५+७=१५

२. तीन वार सात ३×७=२१(+)

३६

३. तीन और सात का योग ३+७=१०(×)

३६×१०=३६०

इस प्रकार सृष्ट्यादि में ही वेद ने यह भी बताया है कि एकवर्ष में ३६० दिन होते हैं । एकमन्त्र और भी देखें -

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शंकवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः।।

(ऋ० १.१६४.४८)

संवत्सररूपी कालचक्र में बारह मास रूपी परिधियाँ, तीन प्रमुख (ग्रीष्म, वर्षा, शरद्) ऋतु-रूपी नाभियाँ और ३६० दिनरूपी अरे होते हैं, जो कि अत्यन्त चलायमान हैं ।

इसी प्रकार ब्राह्मणग्रन्थों में भी संवत्सर में ३६० दिन होने का स्पष्ट वर्णन है - **त्रीणि च ह वै शतानि षष्टिश्च संवत्सरस्याहोरात्राणि** (गोपथ ब्रा० १.१.५.५) । अन्त में ६० संवत्सरों के नाम श्लोकबद्ध बताये

गये हैं।

इस प्रकार प्रमाण-पुरस्सर प्रतिपादित प्रस्तुत पुस्तक विद्वत् समाज व जन-सामान्य के ज्ञान संवर्धन में निश्चय ही परम उपयोगी व व्यावहारिक सिद्ध होगी। यह पुस्तक सतत स्वाध्यायशील व अनवरत यत्नशील साधक श्री पं. उदयनाचार्य के वेद-परिज्ञान व उनमें अवगाहन का ज्वलन्त प्रमाण है। यह उनके गहन अध्ययन को दर्शाता है। इस उपक्रम में उनकी सफलता पर मैं भूरि प्रशंसा करता हूँ और भविष्य में ऐसे ही अन्य आर्ष ग्रन्थ-रत्नों के लेखन व प्रकाशन की कामना करता हूँ।

डॉ.विजयवीर विद्यालंकार
पूर्व प्राचार्य, पण्डित नरेन्द्र प्राच्य महाविद्यालय
पूर्व अधिष्ठाता, प्राच्य भाषा निकाय
उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद

पर्व-मीमांसा
(वेदकालीन पर्वपद्धति)
भूमिका

गायन्ति देवाः किल गीतकानि, धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे ।
स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ।।

विद्वान् लोग भारत की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि इस भारतभूभाग में जन्म लेने वाले लोग धन्य हैं, क्योंकि यह देश लौकिक और पारलौकिक अर्थात् मोक्ष के सुख व आनन्द को प्राप्त कराने वाला है। अतः इस दिव्यता के कारण भाग्यशाली पुरुष पुनः पुनः इसी देश में जन्म लेना चाहते हैं।

महर्षि दयानन्द भी कहते हैं कि **''यह आर्यावर्त देश ऐसा है, जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं हैं। इसलिए इस भूमि का नाम सुवर्णभूमि है''**(सत्यार्थ०११समु०) ।

भारतदेश की इस गरिमा का कारण है वेद और वैदिक परम्परा। परमात्मा ने भोग और अपवर्ग के उद्देश्य से ही इस सृष्टि की रचना की थी (द्र.योगदर्शन २.१८)। इस उद्देश्य की पूर्ति वेदज्ञान से होती है। वेद और वैदिक वाङ्मय में भोग और मोक्ष का समन्वयात्मक मार्ग प्रदर्शित है। जिसका अनुकरण इस देश में सृष्टि के आदिकाल से किया जाता रहा है और अब भी किया जाता है। उसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए मानव जीवन की पद्धतियाँ, नियम, आचार, व्यवहार, कर्तव्य आदि का निर्धारण किया गया था। वही निर्धारण धर्म एवं संस्कृति के अन्तर्गत आता है। जो कि विश्व के सभी मानवों के लिए सदा ही समान रहता है। कहा भी गया है कि **''सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा''**(यजु०७.१४) । वह वैदिक संस्कृति

मानवमात्र के लिए प्राथमिकतया वरणीय है, अनुकरणीय है । क्योंकि वह मानवसमाज के उद्देश्य व लक्ष्य से सम्बद्ध है । अत एव इस संस्कृति से संस्कृत मानवसमाज के सभी क्रियाकलाप वेद एवं वैदिक परम्परा से ओत-प्रोत रहते हैं । यहां तक कि नित्य एवं नैमित्तिक कर्म जैसे- जागना, सोना, खाना, स्नान करना, संध्या-यज्ञ करना आदि भी वेदमन्त्रों के साथ ही किये जाते हैं । इस देश में कोई भी क्रिया हो, चाहे वह सामान्य या विशेष वेदमन्त्रों के विना, ईश्वर के स्मरण के विना नहीं की जाती थी । अर्थात् प्रत्येक भारतीय की जीवनपद्धति, चाहे वह व्यक्तिगत हो, पारिवारिक हो या सामाजिक हो, मनुष्य के लक्ष्य के साथ सदा सम्बद्ध रहती थी । यही वैदिक संस्कृति व परम्परा की विशेषता है । अस्तु प्रकृतमनुसरामः ।

भारतीय मानव समाज की सामान्य जीवनशैली भी वैदिक संस्कृति से अनुस्यूत रहती ही है, साथ में कभी-कभी विशेष सन्दर्भों व विशिष्ट दिनों पर कुछ विशेष आयोजन भी किये जाते हैं, हर्षोल्लास मनाया जाता है जिसे **'पर्व'** कहते हैं । इस पर्व के विषय में हमें सर्वांगीणतया जानना होगा कि यथार्थ में पर्व किसे कहते हैं? पर्व का स्वरूप क्या है? उसे कैसे मनाना चाहिए? उसका उद्देश्य क्या है? उससे मानव को व्यक्तिगतरूप से एवं सामाजिकरूप से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? क्या इसे मनाना अनिवार्य है? इत्यादि । इन विषयों को जानने से पूर्व हमें पर्व शब्द का अर्थ जानना अनिवार्य है । क्योंकि यह एक संस्कृत शब्द है । संस्कृत भाषा की विशेषता यही है कि उसके प्रत्येक शब्द में गूढ़ आशय व भाव छिपे रहते हैं । जो कि उस शब्द के विश्लेषण से ही ज्ञात होते हैं । सामान्यतया कोषकारों के अनुसार पर्व-शब्द के ये अर्थ हैं- १. तिथिविशेष (यथा- अमावास्या, पूर्णिमा, प्रतिपद्, चतुर्दशी, अष्टमी आदि), २. सन्धिकाल (यथा- सन्ध्याकाल,

अमावास्या-पूर्णिमाओं की संन्धि अर्थात् प्रतिपद् , उत्तरायणसन्धि-संक्रान्ति आदि), ३. तिथिविशेषों एवं सन्धिकालों में किये जाने वाले यज्ञ, ४. सन्धि, गांठ, जोड़ (यथा-बांस के गांठ, हड्डियों की सन्धि, पहाडों का जोड़- **पर्वाणि सन्ति यस्य सः पर्वतः**[१]- पहाडों की शृंखला), ५. ग्रन्थभाग (यथा- आदिपर्व, सभापर्व आदि), ६. अवयव, अंग, ७.अंश, भाग, खण्ड, ८. जीने की सीढ़ी, ९.उत्सव, त्योहार, हर्ष का अवसर, १०. विषुवत् (वर्षारम्भ), ११. लक्षणभेद और १२. प्रस्ताव ।

वेद, ब्राह्मणग्रन्थ आदि वैदिक वाङ्मय में तो 'पर्व' शब्द तिथिविशेष, सन्धिकाल[२] एवं उनमें किये जाने वाले यज्ञों तथा हड्डियों के जोड़ों[३] के अर्थों में अधिकतया प्रयुक्त हुआ। वेद के सभी शब्द यौगिक होते हैं, न कि रूढ़ वा योगरूढ, ऐसा प्राचीन आचार्यों का निर्णीत सिद्धान्त है। अतः पर्वशब्द का यौगिक अर्थ को भी देखना होगा, जो कि इस प्रकार है-

''१.पर्व पुनः पृणातेः प्रीणातेर्वा, २.अर्धमासपर्व-देवानस्मिन् प्रीणन्तीति, ३.तत्प्रकृतीतरत् सन्धिसामान्यात्''(निरु०१.२०) ।

महर्षि यास्क ने यहाँ पर्वशब्द के तीन प्रकार के निर्वचन प्रस्तुत किये हैं। उनमें प्रथम प्रकार के निर्वचन से ज्ञात होता है कि पर्वशब्द **'पॄ पालनपूरणयोः'** (क्र्यादि०१८),**'प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च'** (क्र्या०२) धातुओं से बनता है । महर्षि दयानन्द ने **''पिपर्तीति पर्व,ग्रन्थिर्वा''**(उणा०४.११४)

---

१. पर्ववान् पर्वतः (निरु०१.२०)।

२. तस्य (संवत्सरस्य) एतानि पर्वाणि- अहोरात्रयोः सन्धी, पौर्णमासी अमावास्या च, (वसन्तादीनि) ऋतुमुखानि (शत०ब्रा०१.६.३.३५,तु०बृ०उप०१.१.१)। अर्धमासाः पर्वाणि (तै०सं०७.५.२५.१, अपि च द्र० ऋ०१.९४.४,यजु०२३.४३, का०श्रौ०२४.६.४, शां०श्रौ०३.२.१, मनु०६.९. आदि)।

३. गात्राणि पर्वशः= अङ्गानि सन्धितः (दयानन्दः यजु०२३.४२)।

के रूप में निर्वचन प्रस्तुत कर **'पॄ पालनपूरणयोः'**(जुहोत्यादि०४) धातु से पर्व शब्द को निष्पन्न किया है । इन धातुओं से निष्पन्न पर्व शब्द का अर्थ होगा कि **'जिससे वा जिसमें कर्तव्य कर्मों का पालन किया जाता है अथवा किसी का पालन-पोषण किया जाता है और अपने में शुभगुण आदि की न्यूनताओं को पूर्ण किया जाता है अर्थात् अधिकाधिक शुभगुणादि का धारण किया जाता है, उसे पर्व कहते हैं तथा जिससे व जिसमें सभी व्यक्ति परस्पर एक दूसरे को संतृप्त करते हैं, संतुष्ट करते हैं और एक दूसरे से मिलने की कामना करते हैं, एक दूसरे की शुभकामनाओं को चाहते हैं, उसे पर्व कहते हैं ।'** जैसे कि वेद में वर्णन मिलता है कि-**''पर्वाणि सख्याय विव्ये''**(ऋ०४.२२.२) पर्व परस्पर की मित्रता के लिये एवं ईश्वर के साथ सख्यभाव के लिये मनाये जाते हैं ।

निघण्टु (३.२०) में 'पृणाति' (पॄ) धातु दानार्थों में पठित है । इस धातु की व्याख्या करते हुए आचार्य स्कन्दस्वामी कहते हैं कि **''दीयते हि तत्र पितृदेवमनुष्येभ्यः''**(निरुक्त १.२०) अर्थात् **जिस अवसर पर माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी आदि जीवित पितरों को प्रीतिकर भोजन, वस्त्र, औषधि आदि आवश्यक वस्तुओं को प्रदान कर सेवा से उन्हें प्रसन्न किया जाता है और विद्वान् आदि देवों को भोजन, वस्त्रादि के साथ दान-दक्षिणा से सत्कार किया जाता है तथा अपने सेवक, नौकर, बन्धु, मित्र आदि को भी यथायोग्य दान दिया जाता है, उसे पर्व कहते हैं ।**

अब यास्क के द्वितीय प्रकार के निर्वचन पर विचार करते हैं **''अर्धमासपर्व''** मास के अर्धभाग अर्थात् अमावास्या एवं पूर्णिमा को

'पर्व' कहते हैं। क्योंकि ये दोनों मास के शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष की सन्धियाँ हैं। इन सन्धिकालों में वातावरण में परिवर्तन हो रहा होता है। जिसका प्रभाव केवल मनुष्यों पर ही नहीं अपितु पशु-पक्षी आदि सभी प्राणियों पर एवं वृक्ष, वनस्पति, औषधि, नदी, समुद्र, आदियों पर भी पड़ता है। इन अवसरों पर सामान्य दैनिक अग्निहोत्रों से भिन्न कुछ विशिष्ट यज्ञों का अनुष्ठान किया जाता है। जिसे अमावस्या पर किये जाने वाले यज्ञ को 'दर्शेष्टि' तथा पूर्णिमा पर किये जाने वाले यज्ञ को 'पूर्णमासेष्टि' कहते हैं। साहचर्यनियम से इन यज्ञों को भी 'पर्व' कहा जाता है। नियम यह है कि **''तत्साहचर्यात् ताच्छब्द्यम्''**(द्र०महाभाष्य-४.१.४८,न्यायदर्शन-२.२.६१) । जैसे **''यष्टिकां भोजयेति,यष्टिकासहचरितो ब्राह्मणोऽभिधीयते''**- किसी ने किसी से कहा कि 'लाठी को भोजन कराओ' तो यहाँ 'यष्टिका' शब्द से लाठी अर्थ न लेकर सदा लाठी के साथ रहने वाले व्यक्ति का ग्रहण कर उसको खिलाया जाता है। वैसे ही प्रकृत प्रसंग में अमावास्या एवं पूर्णिमा पर्वों पर अवश्यरूप से किये जाने वाले यज्ञों (इष्टियों) को भी 'पर्व' कहा जाता है। चातुर्मास्य यज्ञों (वैश्वदेव, वरुणप्रघास, साकमेध, शुनासीरीय इष्टियों) के लिए भी पर्व शब्द का प्रयोग हुआ है (द्र०कात्ययानश्रौतसूत्र- ५.२.१३,२२.७.१; शांखायनश्रौ०१४.५.६;आश्वलायनश्रौ० ९.२.२आदि) । इनका नाम 'पर्व' इसलिए भी है कि इन पर्व यज्ञों में हवियों के द्वारा देवों को तृप्त किया जाता है- **''देवान् अस्मिन् प्रीणन्तीति [पर्व]**(निरुक्त) ।'' तैत्तिरीय संहिता में भी कहा गया है कि **''अर्धमासे देवा इज्यन्ते''** (तै०सं०२.५.६.६)- मास के अर्धभागों (अमावास्या एवं पूर्णिमा के पर्वों) पर देवताओं को तृप्त करने के लिए यज्ञ किये जाते हैं। देवताओं की तृप्ति यज्ञ की आहुतियों (हवियों)

द्वारा ही होती है-**''आहुतिभिरेव देवान् हुतादः प्रीणाति''**(मैत्रायिणी संहिता १.४.६.) ।

यहाँ 'देव' का तात्पर्य वायु, अग्नि, सूर्य, जल, पृथिवी, आकाशादि हैं[१] । यज्ञों के द्वारा इन भौतिक देवों का प्रदूषण व दोष नष्ट होकर शुद्ध बन जाते हैं । यही इन देवों की सन्तुष्टि है । जैसे कि ईर्ष्या, द्वेषादि मानसिक दोषों से रहित होने पर ही मनुष्य सन्तुष्ट रह सकता है और दूसरों को सन्तुष्ट कर सकता है । इन देवों की सन्तुष्टि (निर्मलता) से सकाल में यथोचित वर्षा होकर सभी प्राणियों को महत् लाभ पहुँचता है । कहा भी गया है कि **''इतः प्रदानाद्धि देवा जीवन्त्यमुतः प्रदानात् मनुष्याः। नेत ऊर्ध्वा आहुतयोऽगच्छन्,नामुतोऽर्वाची वृष्टिः प्रादीयत''** (जैमिनीयब्राह्मण-३.२१६) अर्थात् इस पृथिवीलोक से यज्ञों के माध्यम से हवियों को अन्तरिक्ष लोक में पहुँचाने से देव जीवित रहते हैं, निर्मल होते हैं और अन्तरिक्ष लोक से देवों के द्वारा वर्षा कराने से मनुष्य आदि प्राणी जीवित रहते हैं। यदि यज्ञों का अनुष्ठान नहीं हुआ तो वृष्टि भी नहीं होगी। यही है देवों के संन्तोष का प्रयोजन । एक ओर देवों की सन्तुष्टि है, तो दूसरी ओर मनुष्य आदि की संतृप्ति। यही है प्राचीन पर्व का स्वरूप, यथार्थ पर्व (=देवों का तर्पण और मनुष्यों के द्वारा वृष्टि की कामना करना–**प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च)** । यह वैदिक पर्वपद्धति कितनी अद्भुत है, आनन्ददायक है, आह्लादकर है? यह सुधी पाठक विचार करें ।

इन यज्ञों के द्वारा (वैदिक पर्वपद्धति से) भौतिक देव और

---

१. अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवताऽ-दित्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता (यजु॰१४.२०)।

मनुष्यादि सभी प्राणी भी सन्तुष्ट होते हैं । इतना ही नहीं इन यज्ञों में अन्य प्रकार के अर्थात् चेतन देव भी प्रसन्न हो जाते हैं, वे हैं मनुष्य देव। जैसे कि वर्णन है- **''आहुतिभिरेव देवान् प्रीणाति, दक्षिणाभिर्मनुष्यदेवान् ब्राह्मणान् शुश्रुवुषोऽनूचानान्''** (शत०२.२.२.६) । याज्ञिक लोग आहुतियों के द्वारा भौतिक देवों को प्रसन्न करते हैं तथा दक्षिणादि के द्वारा साङ्गोपाङ्ग वेदों का अध्ययन किये हुए तत्त्वज्ञानी मनुष्यदेवों को भी प्रसन्न करते हैं । इस प्रकार के पर्वयज्ञों से जड़ जगत् में एवं चेतन जगत् में सर्वत्र पर्व ही पर्व (आनन्द ही आनन्द) मनाया जाता है । इस प्रकार जो पर्व को मनाता है अर्थात् चेतनाचेतन जगत् में सर्वत्र प्रसन्नता, प्रीति, संतृप्ति को फैलाता वह याज्ञिक स्वयं भी अवश्य देव बन जाता है, दिव्यता को प्राप्त कर लेता है, एक अलौकिक आनन्द का अनुभव करने वाला हो जाता है-- **''यः[एवं] पृणाति स ह देवेषु गच्छति''**[१](ऋ०१.१२५.५)। अत एव महर्षि मनु ने इन पर्वयज्ञों को अवश्यरूप से करने का आदेश दिया है–

वैतानिकं च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि ।
दर्शमस्कन्दयन् पर्व पौर्णमासं च योगतः ।। (मनु०६.९)

पूर्वोक्त विधि के अनुसार दैनिक यज्ञ, पञ्चमहायज्ञों को और अमावास्या, पूर्णिमा आदि पर्वों पर किये जाने वाले विशिष्ट पर्वयज्ञों को न छोड़ते हुए सभी यज्ञों को निष्ठापूर्वक किया करें ।

दिन के पर्वों (प्रातः,सायम् की सन्धियों पर), मास के पर्वों एवं ऋतुओं के पर्वों पर अवश्य ही यज्ञों का अनुष्ठान करते हुए, यज्ञमय जीवन व्यतीत करते हुए दिव्यता को प्राप्त करने हेतु इन यज्ञों में कुछ विशिष्ट नियम भी निर्धारित किये गये हैं, जिन्हें व्रत कहा जाता है । जैसे- मौन रहना

---

१. **दिव्यत्वमधिगच्छतीत्यर्थः।**

या नियमित बोलना, स्वाध्याय करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, ओंकार का जप और उपवास करना या नियमित भोजन ही करना (यथा- पयोव्रत, दधिव्रत, आमिक्षाव्रत, यवागूव्रत आदि), भोगविलासादि की ओर आकर्षित न होकर भूमि पर सोना, श्रृंगार आदि न करना इत्यादि अनेक व्रतों का विधान किया गया है। जो कि उन पार्वणिक यज्ञों में अनिवार्य थे।

ऋतुकालाभिगामी स्यात् स्वदारनिरतस्सदा ।
पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया ॥ (मनु०३.४५)

...जब ऋतुदान देना हो (स्त्री-पुरुषों के समागम का समय आवे), तब पर्व अर्थात् जो उन ऋतुदान के १६ सोलह दिनों में पौर्णमासी, अमावस्या, चतुर्दशी वा अष्टमी (आदि पर्व) आवे, उसको छोड़ देवें। इनमें स्त्री-पुरुष रतिक्रिया कभी न करें (स्वामी दयानन्द-संस्कारविधि, गर्भाधान०)।

इस प्रकार के निषेधों का तात्पर्य पर्वदिनों में यज्ञों का ही अनुष्ठान होना चाहिए, अन्य भौतिक सुखादि की इच्छा नहीं करनी चाहिए। इतना ही नहीं धर्मशास्त्रों में इन पर्वदिनों को वेदादि शास्त्रों को पढ़ने वा पढ़ाने वालों के लिए अनध्ययन घोषित किया गया। इसका भी अभिप्राय वही है कि वेदादि को पढ़ने-पढ़ाने वाले भी इन पर्वदिनों में यज्ञादियों को त्यागकर प्रतिदिन के समान अपने कार्यों में ही संलग्न न रहें, अपितु पार्वण यज्ञों को अवश्य करें। इस प्रकार की अनिवार्यता में गुरु-शिष्यों को पठन-पाठन बन्द कर अनुष्ठान की तैयारियों एवं अनुष्ठान में ही संलग्न रहना पड़ता था। अनध्ययन का तात्पर्य अवकाश, छुट्टी अर्थात् सभी कार्यों से मुक्त होकर आराम करना नहीं है। यह तो अनार्यों, आलसियों का लक्षण है। प्राचीन काल में अनध्ययन सोद्देश्य था। पर आजकल तो रविवार को अवकाश दिन घोषित कर आराम का दिन बना दिया गया। रविवार का अवकाश

दिन तो ईसाईयों के लिए सोद्देश्य है और वे ही लोग इसे अवकाश के रूप में मनाते आये हैं । क्योंकि वे उस दिन अपने व्यक्तिगत सभी कार्यों को बन्द कर ईसामसीह की आराधना करने हेतु चर्च में जाते हैं । उस दिन कोई भी ईसाई चर्च में न जाकर अपने व्यापारादि निजी कार्यों में न लगा रहे, इस के लिए उन्होंने रविवार को अवकाश दिन घोषित किया । उनकी मान्यता है कि ईसा ने छः दिन काम कर सातवें दिन में (रविवार को) विश्राम किया था । उसी दिन ईसा आशीष देता है(द्र०तौरेतयात्रा-Exodus- पर्व० २०। आ०८.११, अपि च द्र०सत्यार्थप्रकाश-१३) । तो उनके लिए रविवार का अवकाश सोद्देश्य है । पर हम वैदिक (भारतीय) अपने पर्वदिनों (अनध्ययन दिनों के कर्तव्यों) को तो भूले ही नहीं, अपितु ईसाईयों का अन्धानुकरण करते जा रहें हैं, यह तो धिक्कार के योग्य है । यहां प्रमुख ध्यातव्य विषय तो यह है कि सात दिनों (सप्ताह) का विभाग अशास्त्रीय एवं निर्हेतुक है । सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में कहीं भी इनका उल्लेख नहीं है । सर्वत्र संवत्सर के विभाग के रूप में अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि (दिन) आदि का ही वर्णन मिलता है। अस्तु, प्रकृतमनुसरामः- अब हम प्रकृत प्रसंग की चर्चा करते हैं ।

शास्त्रीय दृष्टि कोण से हमने जान लिया था कि पर्वदिनों में विशिष्ट यज्ञों का आयोजन किया जाता था, तथा कुछ विशिष्ट नियमों, व्रतों का पालन किया जाता था और उसके लिये भौतिक कार्यों को त्यागा जाता था । पर्वदिनों में व्रताचरण अनिवार्य होने के कारण कालान्तर में साहचर्यनियम से पर्व एवं व्रत समानार्थक बन गये । दुर्भाग्यवशात् जब वैदिकपरम्परा नष्ट होकर पौराणिकता प्रबल हुई, तब अनेकानेक अवैदिक, अशास्त्रीय व्रत एवं पर्वों का प्रचलन हुआ । आजकल जो पर्व (उत्सव) मनाये जाते हैं, उनमें अधिकांश पर्व इसी युग की देन हैं । वैदिक वा

आर्षयुग में इनकी कोई ऐतिहासिकता नहीं दीखती। पुराण एवं निर्णयसिन्धु, हेमाद्रि, कृत्यरत्नाकर आदि-आदि अनेक अवैदिक ग्रन्थों में जिन व्रतों वा पर्वों (उत्सवों) का वर्णन है, उनकी सूची ही इतनी लम्बी है कि वह एक ग्रन्थरूप धारण कर लिया है (द्र० धर्मशास्त्र का इतिहास, डॉ.पी.वी.काणे, भाग-४,पृ०९६-२३७)।

यथार्थ में व्रतों व पर्वों का मूल उद्देश्य यह है कि व्यक्ति अपनी आत्मिक उन्नति करते हुए मोक्ष को प्राप्त करें । उसकी साधना वा पद्धति अष्टांग योग के रूप में योगदर्शन में विस्तृत रूप से प्रतिपादित है । उसमें यम (=अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह), एवं नियम (=शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान) का जाति, देश, काल, समय के भेदों से रहित होकर पालन करने को महाव्रत कहा गया है- **''जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्''** (योग०२.३१)। **मनुष्य में अज्ञान, आलस्य, प्रमादादि के कारण स्वार्थ, ईर्ष्या, द्वेष, मोह आदि उत्पन्न होते हैं । अतः उनसे दूर कर मनुष्य को आध्यात्मिकता की ओर आकर्षित करना ही पर्वों (उत्सवों) का प्रधान उद्देश्य है ।** यहाँ प्रसंगतः यह बतलाना भी अनावश्यक प्रतीत नहीं होता कि उपवास (व्रत) का वैदिक या यथार्थ स्वरूप क्या है?

उप समीपे यो वासो जीवात्मपरमात्मनोः ।
उपवासः स विज्ञेयो न तु कायस्य शोषणम् ॥

(वराहोपनिषद्-२.३९)

जीवात्मा का परमात्मा के समीप वास करना वा उस के लिए प्रयत्न करना ही उपवास (महाव्रत) कहा जाता है, न कि भोजन बन्द कर शरीर को सुखाना । वह तो उपवास शब्द का अर्थ ही नहीं है । आजकल तो

उपवास शब्द उपहास्य बन कर रह गया। उपवास के नाम से दुगुना खाया जाता है, अस्तु।

पर्वों के विशेष सन्दर्भों पर अवैदिक अर्थात् पौराणिक व्रतों के आचरण से वैदिक परम्परा नष्ट हो जाती है। यह एक अक्षम्य अपराध है, पाप है। अत एव हमें वेद आदेश देता है कि–**"स पर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां मा हिंसीरदितिं विराजम्"** (यजु०१३.४३) अर्थात् वह जिज्ञासु, मुमुक्षु पूर्णिमा, अमावस्या आदि पर्वों में अनुष्ठीयमान यज्ञों के द्वारा और प्रत्येक ऋतुओं में किये जाने वाले यज्ञ वा ऋतुचर्या (ऋत्वनुकूल व्यवहार) के द्वारा शक्तिशाली होता हुआ वेदवाणी की अविच्छिन्न परम्परा का विघात न करें अथवा यज्ञों में गाय आदि पशुओं की बलि न दें। तात्पर्य है कि हमें वेदविरुद्ध नहीं चलना चाहिए। पुनः पर्वों पर हमें क्या करना चाहिए? पर्वों को हमें कैसे मनाना चाहिए? इसमें भी हमें वेद मार्गदर्शन करता है–**"भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणा-पर्वणा वयम्"**(ऋ०१.९४.४.) हे ईश्वर! हम आपकी प्राप्ति के लिए अपने अन्तरात्मा में ज्ञानरूपी इध्म (समिधा) को धारण करेंगे, प्रदीप्त करेंगे। इसके लिए हम (पर्वणा-पर्वणा) प्रत्येक पर्व पर आपका ही स्मरण करते हुए, आपकी ही उपासना (उपवास व्रत) करते हुए हवियाँ प्रदान करें अर्थात् यज्ञ–याग करें। यह है पर्वों को मनाने की प्राचीनतम वैदिक पद्धति। वेद अन्यत्र कहता है कि– **"समानृधे पर्वभिर्वावृधानः"**(ऋ०१०.७९.७) उपासक जीव अपने में सद्गुणों को पूर्ण कर उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त करते हुए अपने जीवन को पूर्ण करता है, चरितार्थ करता है। यही मानव का धर्म भी है। जैसे कि कहा गया है--**"त्रयो धर्मस्कन्धाः-यज्ञोऽध्ययनं दानमिति"**(छा०उप०२.२३.१) अर्थात् धर्म के तीन आधार हैं- १.यज्ञ, २.वेदों का स्वाधाय और ३. दान।

ये तीनों ही पर्वों (उत्सवों) पर किये जाते थे । **''यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः''**(वैशेषिकदर्शन १.१.२)- जिससे इहलौकिक सुख और निःश्रेयस अर्थात् मोक्ष प्राप्त हो, वही धर्म है । इस प्रकार प्राचीन वैदिक पर्व पूर्णतया धर्ममय थे ।

अब हम निरुक्त के तीसरे निर्वचन की ओर प्रस्थान करते हैं । **''तत्प्रकृतीतरत् (अपि पर्व), सन्धिसामान्यात्''** अर्थात् जिस प्रकार मासादि सन्धियों को पर्व कहा गया है, वैसे ही अन्य वस्तुओं की सन्धियों को भी 'पर्व' कहा जाता है । जैसे हड्डियों की सन्धियाँ (जोड़), बांस की गांठ, पहाड़ों के जोड़ आदि । इस अर्थ को महर्षि दयानन्द ने भी प्रकट किया-''पिपर्तीति पर्व, **ग्रन्थिर्वा** '' (उणादि०४.११४)। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से इस अर्थ के वैदिक प्रयोगों को भी हम यहाँ दिखाते हैं-**''निर्मज्ञानं न पर्वणो जभार''** (ऋ०१०.६८.९) अज्ञान की ग्रन्थी (गांठ) रूप बन्धन में लिप्त जीव को (ईश्वर) मुक्त करें । **''प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि''** (ऋ०१०.८७.५, अथर्व०८.३.४) ज्ञानीपुरुष अपने अज्ञानमय ग्रन्थियों को नष्ट करें । इस अज्ञानरूप पर्वत को तोड़ने का प्रकार व विधि दूसरे निर्वचन की व्याख्या में दिखा चुके हैं और इसी भूमिका की अग्रिम पंक्तियों में भी वेदमन्त्रों के माध्यम से तथा नववर्षेष्टि में विनियुक्त मन्त्रों में भी हम इस विधि को दिखायेंगे । महर्षि यास्क ने पर्व शब्द के अपने निर्वचन से हमें बोध कराया कि यथार्थतः पर्व किसे कहते हैं? पर्व को कैसे मनाना चाहिए, पर्व को मनाने का स्वरूप क्या है? उसका उद्देश्य क्या है? इत्यादि ।

हम आगे भी कुछ अन्य वेदमन्त्रों के माध्यम से पर्व के व उसकी मनाने की पद्धति के वैदिक स्वरूप को और भी अधिक भलीभांति जानने का प्रयास करेंगे । इससे पूर्व हम यहाँ समाज में प्रचलित शुभ-अशुभ पर

संक्षिप्त विचार प्रस्तुत करेंगे । पर्व दिनों को प्रायः सभी लोग शुभदिन (सुदिन) ही मानते हैं । पर वार, तिथि, मुहूर्त, नक्षत्र, ग्रह, राशि आदियों में से कुछ को शुभ एवं कुछ को अशुभ मानते हैं और इन्हीं के कारण शुभ-अशुभ वा सुख-दुख प्राप्त होते हैं, ऐसी मान्यता रखते हैं । यह सब पौराणिक युग में लिखित फलित ज्योतिष के ग्रन्थों का दुष्प्रभाव है । जो कि सर्वथा कल्पित, निराधार, अविवेक पूर्ण है । प्रारम्भ में ही हमने बताया था कि ईश्वर ने यह सृष्टि जीव के भोग तथा अपवर्ग (मोक्ष) के लिए अर्थात् मनुष्य के कल्याण के लिए ही बनायी है । तब तो इसकी प्रत्येक वस्तु मनुष्य के लिए हितकारी वा शुभ ही होगी । अब शुभ-अशुभ, हित-अहित आदि तो मनुष्य के विवेक और कर्मों पर निर्भर हो जाता है । यदि कोई ग्रह, वार, तिथि आदियों में से कुछ को अशुभ मानता है तो वह दोष उन ग्रहादियों पर नहीं अपितु ईश्वर पर जाता है । क्योंकि उनका निर्माता ईश्वर है । फलित ज्योतिष(?) को मानने वाले लोग यह विचार कर नहीं पा रहें हैं कि उनकी वह आस्था ईश्वर की कर्म-व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न लगाती है । शराब, मांस के व्यापारी भी अपने-अपने दुकानों में अपने-अपने इष्ट देवी-देवताओं के चित्र लगाते हैं और प्रतिदिन उनकी पूजा भी करते हैं । साथ में प्रत्येक कार्य को शुभ-अशुभ का विचार कर व पण्डितों से पूछकर ही करते हैं । अपने घर व दुकान आदियों को वास्तुविदों(?) के परामर्श से ही बनाते हैं, यहाँ तक कि अपने मांसादि व्यापार के प्रारम्भ के लिए भी शुभमुहूर्त (?) निकाल कर ही आरम्भ करते हैं । तो क्या उतने से ही उन व्यक्तियों का कल्याण होगा? उन व्यापारों के मुहूर्त निकालने वाले पण्डित व ग्रन्थ शुभ वा प्रामाणिक कहने योग्य हैं? क्या यह सब ईश्वर पर अनास्था नहीं है? अज्ञान नहीं हैं? स्पष्ट है यह सब केवल अपने अज्ञान वा अविवेकता को कुछ

काल तक छिपाकर सन्तुष्ट होने का गोरखधन्धा मात्र है । किसी कवि ने इसी मर्म को बड़े सरल और तात्त्विक शब्दों में कहा है-

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः ।
फलं पापस्य नेच्छन्ति पापं कुर्वन्ति मानवाः ।।

मनुष्य पुण्य कर्मों के फलों (सुखों) को तो बहुत चाहता है, पर पुण्यकर्म करने के लिए उत्सुक नहीं रहता । पापकर्मों के फलों (दुःखों) को तो कभी नहीं चाहता, पर पापकर्म करने के लिए सदा उद्यत रहता है । इस संसार में फैले हुए अज्ञान, पाखण्ड, पौराणिकता, फलित ज्योतिष आदियों का मूल कारण यही है ।

वेद और आर्षग्रन्थों का दृष्टिकोण उससे सर्वथा भिन्न है । जो कि त्रैकालिक सत्य है । वेद का सिद्धान्त है कि शुभ-अशुभ, भाग्य आदि सभी मनुष्य के हाथ में हैं अर्थात् उसके कर्मों के आधीन हैं– **कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः** (अथर्व० ७.५०.८) । मनुष्य अपने जीवन के प्रत्येक दिन को शुभदिन व सुदिन कैसे बनायें, अपने जीवन को सुख-शान्तियों से परिपूर्ण अर्थात् अपने जीवन के प्रत्येक दिन को पर्वमय (पॄ पालनपूरणयोः) कैसे बनावें? इसे वेदमंत्रों के माध्यम से देखें और जानें-

जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य आ विदथे वर्धमानः ।
पुनन्ति धीराः अपसो मनीषा देवया विप्र उदियर्ति वाचम् ।।

(ऋ०३.८.५)

(जातः)वेदज्ञान को प्राप्त किये हुए द्विज (अह्नां सुदिनत्वे जायते) अपने कुल, समाज, देश, धर्म आदि के सुदिनत्व अर्थात् समुन्नति के लिए समर्थ होता है और वह (अर्यः विदथे सम्+आ+वर्धमानः) अपने इन्द्रियों का स्वामी बनकर ज्ञानयज्ञ में, ज्ञान के प्रचार प्रसार में भली भांति अग्रसर

होता रहता है, अथवा (सन्मर्ये विदथे आ+वर्धमानः) विद्वानों की ज्ञानगोष्ठियों में प्रशंसनीय होता है । तथा वह (विप्रः देवयाः वाचम् उदियर्ति) विद्वान् ईश्वर का यजन अर्थात् ईश्वर की आज्ञा का पालन करते हुए वेदवाणी का उपदेश करता है । इस प्रकार वे (धीराः अपसः मनीषा पुनन्ति) मेधावी, पुरुषार्थी पुरुष अपनी बुद्धि, प्रतिभा से सब मनुष्यों को पवित्र करते हैं ।

''उन्हीं का (दिन) सुदिन होता है जो विद्या और उत्तम शिक्षा का संग्रह कर विद्वान् होते हैं । जैसे शूरवीर पुरुष दुष्टों को जीत के धनादि ऐश्वर्य के साथ सब ओर से बढ़ते हैं, वैसे ही विद्या से विद्वान् (अज्ञान को नष्ट कर ज्ञान, यश आदि के साथ सब ओर से) बढ़ते हैं''(महर्षि दयानन्द- ऋ०३.८.५)

नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम् ।
दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ।। (ऋ०३.२३.४)

प्रभु कहते हैं कि हे जीव! (त्वा पृथिव्याः वरे निदधे) तुझे इस पृथिवी के सर्वश्रेष्ठ स्थान पर अर्थात् सर्वोत्तम शरीर में स्थापित किया हूँ । (इळायाः पदे निदधे) गरिमामय वेदज्ञान प्राप्त करने योग्य शरीर में प्रतिष्ठित किया हूँ तथा (अह्नां सुदिनत्वे निदधे) तुम्हारे जीवन के दिनों में माता, पिता, आचार्य, गुरु व विद्वानों की संगति वाले शुभदिन अर्थात् शुभ अवसर प्रदान किया हूँ । (अग्ने दृषद्वत्यां मानुषे आपयायां सरस्वत्यां रेवत् दिदीहि) हे प्रगतिशील जीव! तू इस पत्थर के सदृश सुदृढ़ शरीर में रहते हुए प्रभु की प्राप्ति के लिए उपासना में एवं वेदज्ञान की दीप्ति में स्थिर रहकर, तू ऐश्वर्यवान् होकर प्रकाशित हो जाओ ।

उप नो वाजा अध्वरमृभुक्षा देवा यात पथिभिर्देवयानैः ।
यथा यज्ञं मनुषो विक्ष्वा३सु दधिध्वे रण्वाः सुदिनेष्वह्नाम् ।। (ऋ०४.३७.१)

हे (ऋभुक्षाः वाजाः देवाः) महद् मेधा सम्पन्न विद्वानों ! आप लोग (नः अध्वरम् उपयात) हमारे यज्ञ में उपस्थित हों और (देवयानैः पथिभिः) अलौकिक आनन्द को प्राप्त कराने वाले दिव्यमार्ग के द्वारा हमारी जीवन यात्रा को प्रशस्त कीजिये । (रण्वाः मनुषः) रमणीय मनीषियों! आप लोग (अह्नाम् सुदिनेषु) संवत्सर के सामान्य दिनों में आने वाले विशिष्ट पर्व दिनों में या उन पर्वीय यज्ञों में उपस्थित होकर (आसु विक्षु यथा यज्ञं दधिध्वे) इन प्रजाओं में यथार्थ यज्ञ को अर्थात् ईर्ष्या, द्वेषादि दोषों से रहित परस्पर दान, संगति, प्रीति आदि व्यवहारों को प्रचलित कराईए । अर्थात् इन पवित्र कर्मों से ही दिन शुभदिन हो सकते हैं, अन्यथा नहीं ।

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ।। (ऋ०२.२१.६)

(इन्द्र) हे प्रभो! आप (अस्मे) हमें (श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि) शुद्ध, पवित्र अन्नादि धन प्रदान कीजिए । (दक्षस्य चित्तिम्) कुशल व्यक्तियों का सामर्थ्य व ज्ञान हमें प्राप्त कराईए । (सुभगत्वम्) उत्तम ऐश्वर्य (रयीणां पोषम्) ऐश्वर्यों की वृद्धि (तनूनाम् अरिष्टिम्) शरीर की निरोगता और (वाचःस्वाद्मानम्) वाणी की मधुरता या जीभ के लिए शुद्ध, सात्विक एवं स्वादिष्ट भोजन प्रदान कर (अह्नां सुदिनत्वम्) हमारे जीवन के प्रत्येक दिन को शुभदिन बनाईए ।

जीवन की चरितार्थता अर्थात् हमारे प्रत्येक दिन को शुभ, सार्थक बनाने के लिए धनाद्यैश्वर्यों की पवित्रता, सत्कार्यों में कुशलता और प्रीति, परोपकार, दान, यज्ञादि पवित्र कार्यों के अनुष्ठान के निमित्त ऐश्वर्य की वृद्धि, शरीर की स्वस्थता, मधुरवाणी अथवा शुद्ध-सात्विक भोजन होना अनिवार्य है । तभी हमारा दिन सुदिन या पर्व मनाना होगा ।

वसिष्ठं ह वरुणो नाव्याधादृषिं चकार स्वपा महोभिः ।
स्तोतारं विप्रः सुदिनत्वे अह्नां यान्नु द्यावस्ततनन् यादुषासः ।।

(ऋ०७.८८.४)

(वरुणः वसिष्ठं नावि ह आधात्) वरणीय आचार्य उनके आधीन वसने वाले ब्रह्मचारी शिष्य को भवसागर से पार उतारने वाली वेदज्ञान रूपी नौका में अवश्य स्थापित करें। वह स्वयं (स्वपाः महोभिः वसिष्ठं ऋषिं चकार) उत्तम कर्मशील, सदाचारी होकर बड़े-बड़े गुणों से उत्तम ब्रह्मचारी को मन्त्रार्थ के दर्शन करने में समर्थ विद्वान् बनावें । (विप्रः अह्नां सुदिनत्वे यात् द्यावा नु यात् उषासः नु स्तोतारं ततनन्) मेधावी आचार्य दिनों को शुभ, मङ्गलकारी बनाने के लिए आये दिनों एवं आयी रातों में भी अध्ययनशील शिष्य को और अधिक ज्ञानवान् बनावें । अर्थात् ज्ञानार्जन से ही मनुष्य के दिन उज्वल हो सकते हैं, अन्यथा नहीं ।

इमां मे अग्ने समिधं जुषस्वेळस्पदे प्रति हर्या घृताचीम् ।
वर्ष्मन् पृथिव्याः सुदिनत्वे अह्नामूर्ध्वो भव सुक्रतो देवयज्या ।।

(ऋ०१०.७०.१)

ईश्वर उपदेश दे रहे हैं कि (अग्ने! मे इमां समिधं जुषस्व) हे प्रगतिशील जीव! तू मेरी इस वेदज्ञान के रूप में दी गई ज्ञानदीप्ति को प्रीति एवं श्रद्धा पूर्वक ग्रहण कर । (इडस्पदे घृताचीम् प्रतिहर्य) वेदज्ञान की प्राप्ति के निमित्त तू अपने अन्तःकरण में व्याप्त मोहादि अज्ञानों को नष्ट कर । (सुक्रतो! पृथिव्याः वर्ष्मन् अह्नां सुदिनत्वे देवयज्या ऊर्ध्वो भव) हे उत्तम प्रज्ञा वा उत्तम कर्मवाले जीव! तू इस धरातल पर अपने जीवन के दिनों को सुदिन व दिव्य बनाने के लिए देवयज्ञ, व्रत-तप पुरुषार्थ आदि के द्वारा जागृत हो जाओ, अज्ञान में व सोने में ही मत रहना । सोने वाले व

अज्ञानियों के दिन कभी सुदिन नहीं हो सकते ।

आ तेन यातं मनसो जवीयसा रथं यं वामृभवश्चक्रुरश्विना ।
यस्य योगे दुहिता जायते दिव उभे अहनी सुदिने विवस्वतः ।।

(ऋ०१०.३९.१२)

हे (अश्विना) सुशिक्षित जितेन्द्रिय स्त्रीपुरुषों! (वाम् यं रथम् ऋभवः चक्रुः) तुम दोनों के जिस दिव्य रथ को ऋभुलोग [ऋभु तीन हैं- १.ऋभु अर्थात् सत्यज्ञान से परिपूर्ण व्यक्ति २.विभ्वन्=व्यापक हृदयवान् व विशाल मन-मस्तिष्क वाला व्यक्ति, ३.वाज= जिसका शरीर सम्पूर्णरूप से शक्तिशाली हो, इन तीन गुणों से युक्त विद्वान् लोग] उपदेश करते हैं (तेन मनसः जवीयसा आयातम्) मन के बल से चलायमान उस रथ से मोक्षप्राप्ति के निमित्त आजाओ, सन्नद्ध हो जाओ (यस्य योगे दिवः दुहिता जायते) जिससे सम्बन्ध होने पर इसमें तत्त्वज्ञान का पूरण करने वाली वेदवाणी आविर्भूत हो जाती है । तब (विवस्वतः उभे अहनी सुदिने) सूर्य के कारण उत्पन्न दोनों रात-दिन अर्थात् प्रत्येक दिन तुम्हारे लिए शुभ दिन ही होते हैं, सुख, शान्ति और आनन्द को लाने वाले होते हैं ।

त्वामीळते अजिरं दूत्याय हविष्मन्तः सदमिन् मानुषासः ।
यस्य देवैरासदो बर्हिरग्नेऽहान्यस्मै सुदिना भवन्ति ।। (ऋ०७.११.२)

हे (अग्ने) ईश्वर! (हविष्मन्तः मानुषासः दूत्याय सदम् इत् अजिरं त्वाम् ईडते) सतत यज्ञ करने वाला मननशील मनुष्य दूत कर्म के लिए अर्थात् ज्ञान का सन्देश प्राप्त करने के लिए सदा ही पवित्र एवं उन्नति कराने वाले तुम्हारी उपसना करते हैं । (यस्य बर्हिः देवैः आसदः) जिसके आसन पर अर्थात् निर्मल अन्तःकरण में आप देवों के साथ विराजमान होते हैं (अस्मै अहानि सुदिना भवन्ति) एसे व्यक्ति के लिए सभी दिन शुभ (आह्लादक)

दिन ही होते हैं ।

स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत् ।
विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो वि दुरो अभि द्यौत् ।।

(ऋ०४.४.६)

(यविष्ठ) हमारी बुराइयों को दूर कर अच्छाईयों को मिलानेवाले हे प्रभो! (य ईवते ब्रह्मणे गातुम् ऐरत्) जो जगत् को संचालन करने वाली शक्ति के स्वामी महान् परमेश्वर को प्राप्त करने के मार्ग को उपदेश करता है (स ते सुमतिं जानाति) वह तेरी उत्तम ज्ञान को जानता है । (अस्मै विश्वानि सुदिनानि) ऐसे विद्वान् के लिए उसके सभी दिन शुभ दिन ही होते हैं । और उसको (रायः द्युम्नानि) सर्वविध ऐश्वर्य एवं यश वा ज्ञान की प्रतिभा प्राप्त होती है । (अर्यः दुरः वि अभिद्यौत्) इन्द्रियों का स्वामी होता हुआ सब इन्द्रिय द्वारों को विशिष्टरूप से प्रदीप्त करने वाला होता है ।

सेदग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः ।
पिप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना सासदिष्टिः। (ऋ०४.४.७)

हे(अग्ने) परमेश्वर! (यः नित्येन हविषा य उक्थैः त्वा स्वे आयुषि दुरोणे पिप्रीषति) जो प्रतिनित्य यज्ञ की हवियों के द्वारा और स्तुतियों के द्वारा आपको अपने जीवन में एवं शरीररूप घर में प्रसन्न करने का यत्न करता है (स इत् सुभगः सुदानुः अस्तु) वही बड़े सौभाग्यशाली तथा उत्तम दानशील हो । (अस्मै विश्वा इत् सुदिना) उसके ही सब दिन सुखकारक एवं शुभदिन होते हैं । (सा इष्टिः असद्) उसके ही यज्ञ सफल होते हैं ।

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय ।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ।।

(ऋ०५.६०.५)

(एते अज्येष्ठासः अकनिष्ठासः भ्रातरः सौभगाय सं वावृधुः) ये मनुष्य परस्पर छोटे-बड़े, उच्च-नीच आदि भेदों से रहित होकर भाईयों के समान एक दूसरे का भरण पोषण करते हुए सौभाग्य अर्थात् उत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए मिलकर आगे बढ़ें, उन्नति को प्राप्त करें । इस के लिए प्रत्येक व्यक्ति (पिता) आवश्यक कर्तव्यों का पालन करने वाला (युवा) स्वस्थ एवं बलशाली (स्वपा) (सु+अपाः) उत्तम कर्मों को करता हुआ अपने परिजनों की रक्षा करता हुआ (रुद्रः) बाह्य एवं आन्तरिक सभी विघ्नों एवं आसुरीभावों को नष्ट करने वाला (मरुद्भ्यः) इन वायु के समान बलवान् एवं पुरुषार्थियों के लिए (पृश्निः सुदुघा) सूर्य, आकाश, पृथिवी और पुष्टिकारक दूधादि पदार्थों को देने वाली गौवें होवें (एषां सुदिना) ऐसे व्यक्तियों के दिन ही सुदिन होते हैं। अर्थात् ऐसा कर्तव्य निष्ठ व्यक्ति ही पर्व मनाने योग्य है ।

अभी तक हमने वेदमन्त्रों के माध्यम से जाना कि **वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक स्तर पर मानसिक एवं आत्मिक सुख-शान्ति को प्राप्त करने की साधना वा पद्धति ही ''पर्व''(सुदिन) कहने योग्य है ।** केवल कुछ मिष्ठान्नादि बनाकर व खाकर खुशी मनाना मात्र पर्व नहीं हैं, न ही वह पर्व शब्द का अर्थ है । **सांसारिक जीवन में स्वार्थादि उत्पन्न होकर मनुष्य का जीवन केवल भौतिकता की ओर प्रवाहित होने लगता है, जिसे मध्य- मध्य में मनाये जाने वाले पर्व आध्यात्मिकता की ओर परिवर्तित कर लेते हैं । यही पर्वों का मूल उद्देश्य है ।** जिसे मानव समाज को जानना अनिवार्य ही नहीं, अपितु परम आवश्यक है । संवत्सर में आने वाले ऋतु संबन्धी पर्वों को मनाते हुए हम अपने जीवन में उन ऋतुओं को कैसे उतारना है, यह हम

नववर्षेष्टि में विनियुक्त मन्त्रों में दिखायेंगे। यहाँ पर हम स्थान संकोच न करते हुए शतपथ ब्राह्मण के आधिकारिक विद्वान् स्वामी समर्पणानन्द (पं०बुद्धदेव विद्यालंकार) जी के कुछ विचार यथावत् प्रस्तुत कर रहे हैं। जिससे पाठकों को भलीभांति हृदयगंम होगा कि यथार्थ में शास्त्रीय दृष्टिकोण से संवत्सर भर के सभी पर्वों को हम अपने निजी जीवन में कैसे मनायें वा उतारें। कृपया अवलोकन करें-

''यह छठे अध्याय का तीसरा ब्राह्मण आरम्भ होता है। इस ब्राह्मण में अग्नि-सोम-सम्बन्धी आज्यभाग, उपांशुयाज और पुरोडाश की आहुतियों का वर्णन है। ये तीनों आहुतियाँ अग्नि और सोम देवता के नाम पर दी जाती हैं। इसलिए इस में अग्नि और सोम की महिमा बताई गयी है। इसमें यह बताया गया है कि इन्द्र अर्थात् समाज का प्रतिनिधि राजा, त्वष्टा अर्थात् व्यक्ति के देवताओं को किस प्रकार इन देवताओं की सहायता से अपने लिए उपयोगी बना सकता है। अग्नि और सोम के इसमें तीन जोड़े (पर्व) बताये गये हैं- सूर्य-चन्द्र, दिन-रात, शुक्लपक्ष-कृष्णपक्ष। इससे तात्पर्य इस प्रकार है- सूर्य तथा चन्द्र का अर्थ विज्ञान तथा ललितकला है, दिन-रात से तात्पर्य स्त्री-पुरुष है, तथा शुक्ल और कृष्णपक्ष से तात्पर्य है कि बच्चे के गर्भाधान से प्रसूति तक शुक्लपक्ष तथा प्रसूति से दूसरी बार गर्भाधान तक कृष्णपक्ष। इन तीनों जोड़ों द्वारा राजा व्यक्तियों को समाज की सेवा में प्रेरित करता है। अब यह किस प्रकार होता है, कण्डिका छः से इस सारे प्रकरण की व्याख्या करते हैं...

पूर्णमासी के दिन ही उपवास करना चाहिए, क्योंकि उपवास तो दूसरे के अधीन रहकर शिक्षा प्राप्त करने का चिह्न है। यह शिक्षा वृत्रासुर के वध के लिए और पूर्णमासी के चन्द्रोदय के लिए ही तो दी जाती है।

पूर्णमासी के चन्द्र के उदय होने के पीछे उपवास करने का भाव यह होगा कि मनुष्य सादा नाबालिग रहे, सदा उसके वृत्रासुर कोई अन्य मारा करे, वह कभी अपने पैरों पर खड़ा हो ही नहीं, सदा दूसरों का पिछलग्गू और परमुखापेक्षी बना रहे। अतः उपवास पूर्ण चन्द्र के उदय से अर्थात् मस्तिष्क के परिपाक से पहले ही होना चाहिए। इसलिए पूर्णमासी के दिन ही उपवास करें ॥३४॥

अब प्रश्न उठता है कि वे विशेष यज्ञ कब किये जाते हैं? इसका उत्तर है सन्धिकाल में (=पर्वों पर)। उदाहरण के लिए, बच्चे का नौजवान होकर गृहस्थ में प्रवेश करना एक आश्रम से दूसरे में संक्रान्ति है। यह सन्धिकाल है। यह विशेष संस्कार की अपेक्षा करता है। स्त्री-पुरुष परस्पर मिलकर गर्भाधान करते हैं। यह सन्धि-काल है। यह संस्कार की अपेक्षा करता है। विद्यार्थी पितृकुल से गुरुकुल में प्रवेश करता है। यह गुरु-शिष्य का सन्धिकाल है। मनुष्य का सारा जीवन सन्धियों का बना हुआ है। इससे स्त्री-पुरुष के विवाह की अहोरात्र की सन्धि से उपमा दी गयी है। बालक की प्रसूति के पश्चात् उसका समावर्तन होना तथा दूसरे का गर्भाधान होना यह कृष्णपक्ष तथा शुक्लपक्ष की सन्धियां हैं। फिर एक आश्रम से दूसरे आश्रम में जाना चातुर्मास्य सन्धि है। बाल्यावस्था संग्रह के कारण शरत् कही गई। यौवन वसन्त है, वानप्रस्थ तपःप्रधान ग्रीष्म है। फिर ज्ञान-वर्षा का प्रारम्भ होता है। सो सन्धिकाल में जो क्रिया जिसकी द्योतक है उसकी समाप्ति के पीछे उसका अभिनय शोभा नहीं देता। पूर्णमासी का चन्द्र समावृत्त स्नातक का प्रतिनिधि है। इधर व्रतोपायन उसे गृहस्थाश्रम में भी पुराने ब्रह्मचर्यकाल का स्मरण दिलाने के लिए ही है। इसलिए व्रतोपायन पूर्णमासी के चन्द्र से पहले ही होना चाहिए। यही बातें अगली कण्डकाओं

में कही गई हैं ।

इन अगली कण्डिकाओं का तात्पर्य देखने से पहले एक शब्द का अर्थ और समझ लेना चाहिए, वह है संवत्सर । संवत्सर शब्द का अर्थ है ''छत'' या ''शामियाना'' जिसके नीचे लोग 'सम्‌वसन्ति' अर्थात् मिलकर वास करते हैं । जिन्होंने कभी बड़े तथा सुन्दर शामियाने देखे हैं वे लोग जानते हैं कि उनमें बहुत से टुकड़े इकट्ठे कर एक शामियाना बनाया जाता है । मण्डल अथवा छत में भी कड़ियाँ आदि सन्धियाँ होती हैं । इसी प्रकार मनुष्य-जीवन भी एक संवत्सर है । और उसमें अहोरात्र अर्थात् पति-पत्नी की सन्धि वर्षरूपी शामियाने की शरद्, ग्रीष्म, वर्षादि की संन्धि के समान है । अब कण्डिकाओं का अर्थ इस प्रकार है–

जीवन का संवत्सर अर्थात् शामियाना किस प्रकार का बनाना चाहिए, यह समझने के लिए परमपिता परमात्मा ने संवत्सररूपी शामियाना हमारे सिर पर तान दिया है । एक वर्ष वह जितने भिन्न रूप धारण करता है वे मानो इस शामियाने की भिन्न-भिन्न रंगो की घांटियाँ हैं जिनमें स्थान-स्थान पर सन्धियां हैं जो जीवन की सन्धियों का परिचय देती हैं । जिस प्रकार संवत्सर दिन-रात से बना है इसी प्रकार गृहस्थ-जीवन स्त्री-पुरुष के जोड़े से बना है । जिस प्रकार रात्रि की गोद में चन्द्रमा आता है उसी प्रकार स्त्री की गोद में बालक आता है, या कभी-कभी पिता की गोद में भी चला जाता है । पुत्र चन्द्र कभी दिन को भी दिखाई देता है, किन्तु उसका मुख्य स्थान माता की गोद है । वह जन्म वहीं से लेता है । जिस प्रकार दिनपति की ही एक रश्मि चन्द्र को प्रकाशित करती है इसी प्रकार गृहपति के वीर्यरूपी सूर्य की एक रश्मि ही बालकरूपी चन्द्र को जन्म देती है । बालक का गर्भाधान शुक्लपक्ष का आरम्भ है । प्रसूति अष्टमी का चन्द्र है तथा

शिक्षा पाकर स्नातक बनना पूर्णमासी है। प्रसूति के पश्चात् कृष्णपक्ष आरम्भ होता है। जब तक बालक दूध पीना छोड़ नहीं देता तथा नया गर्भाधान नहीं होता तब तक कृष्णपक्ष है। फिर सम्पूर्ण जीवन पर दृष्टिपात करने से ब्रह्मचर्यकाल संग्रह-काल होने से शरत्काल है। स्नातक बनने के लिए घोर परिश्रम करना होता है। वह हेमन्त है। उसके पश्चात् वसन्त का रूप गृहस्थाश्रम का काल है। वानप्रस्थ तपःप्रधान होने से ग्रीष्म है। उसके पश्चात् वर्षा संन्यास है, जब पुरुष जीवन-भर के संचित ज्ञान को मेघ-वृत्ति धारण कर देश-देशान्तर में बरसता है। सो इन सन्धिकालों में तथा इनके संबन्ध में विशेष शिक्षा देने के लिए ये यज्ञ बनाये गये हैं। विशेष जीवन के कार्यों में लगे मनुष्य को जब तक समय-समय पर स्मरण न दिलाया जाय तो उसमें शिथिलता आ जाती है, यही बात ३५ वीं कण्डिका में कही गई है। प्रजापति जब प्रजा उत्पन्न करने में लगा रहा तो उसके पर्व ढीले हो गये। सो वह प्रजापति संवत्सर ही है। उसकी सन्धि दिन-रात, दर्शपूर्णमास तथा ऋतु-संधियाँ हैं।

वह ढीली संन्धियों से सन्धान-कार्य में असमर्थ हो गया तो पौर्णमासादि यज्ञों से उसकी सन्धियाँ फिर कस दी गईं-अग्निहोत्र से दिन-रात की, दर्शपौर्णमास से पक्षों की और चातुर्मास्यों से ऋतुओं की तब सन्धियाँ कसी जाने पर वह इस सम्पत्ति का अधीश्वर हो गया। (शत०ब्रा०१.६.३.१, ३४-३७- स्वामी समर्पणानन्द भाष्य)

संवत्सर शब्द में ही याज्ञिक एवं आध्यात्मिक अर्थ समाहित हैं। संवत्सर शब्द ''सर्व+त्सर'' शब्दों से बनता है[१]। त्सर छद्मगतौ (भ्वा०३७३)

१. स सर्वत्सरोऽभवत्, सर्वत्सरो ह वै नामैतद् यत् संवत्सर इति (शतपथ० ११.१.६.१२)।

धातु का अर्थ है कि- गुप्तरूप से चुपचाप जाना, पहुँचना, प्राप्त करना । जो अज्ञात रूप से सर्वत्र एवं सब में व्याप्त हो जाता है, वही संवत्सर कहलाता है । सम्पूर्वक वस-निवासे (भ्वा०७३१) धातु से औणादिक 'सरन्' (चित्) प्रत्यय होकर भी संवत्सर शब्द बनता है । जिसमें सभी ऋतु संगठित होकर क्रमविशेष में वसते हैं वही संवत्सर कहलाता है । संवत्सर वसंत ऋतु से आरम्भ होता है, ऐसा पहिले ही सप्रमाण कह चुके । वेद कहते हैं कि वसंत ऋतु आज्य (घी) के समान है– **''वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्मऽइध्म शरद्धविः''** (ऋ०१०.९०.६, यजु०३१.१४, अथर्व० १९.६.१०) । आज्य एक मधुर एवं स्निग्ध (स्नेह युक्त) पदार्थ है । वसंत ऋतु में भी सर्वत्र हरित रूपी स्नेह दृग्गोचर होता है । ग्रीष्म ऋतु के समान कहीं भी शुष्कता दिखाई नहीं देती । वैसे ही मनुष्यों में भी माधुर्य, प्रेम, स्नेह रूपी आज्य व्याप्त हो जाय तो वह मानवीय वसंत ऋतु है, मानवीय संवत्सर का आरम्भ है । ऐसे दिव्य गुण से मनुष्य सभी के हृदयों में गुप्तरूप से प्रवेश कर जाता है और उनमें वस जाता है । ऐसे स्निग्ध आज्य से ही देवताओं ने अर्थात् दिव्यगुणयुक्त स्नेही महापुरुष सभी कामनाओं को जीता है और अमरत्व को प्राप्त किया है[१] । इध्म (समिधा) अग्निप्रधान है । इसीलिए वह ग्रीष्म ऋतु का प्रतीक है। शरद् ऋतु में अन्न पक जाता है । उस पके हुए नये अन्न से यज्ञों में हवियां (आहुतियां) दी जाती हैं, अत एव शरद् ऋतु हवि का प्रतिनिधि है । परोपकार की भावना, सभी प्राणियों के प्रति मित्रदृष्टि रखना अर्थात् स्नेह रूपी आज्य से सभी को प्रसन्न करना, आनन्दित करना ही वैयक्तिक संवत्सर

---

१. आज्येन वै देवाः सर्वान् कामान् अजयन्, सर्वममृतत्वम् (कौषीतकी ब्रा० १४.१)।

का वसंत ऋतु है । अपने में और समाज में व्याप्त सभी दुरितों को, आसुरी भावों को इध्म (समिधा) के समान भस्म करना ही ग्रीष्म ऋतु है । यह एक महान् तप है । ऐसे तप से परितप्त होकर व्यक्ति का परिपक्व होना ही, जीवन की सार्थकता ही शरद् ऋतु है। यही यथार्थ सांवत्सर यज्ञ है, पार्वण यज्ञ है।

वैदिक पर्वों के स्वरूप, पद्धति व उद्देश्य को हमने जान लिया है। इस समय समाज में प्रचलित पर्वों में जो वैदिक परम्परा के अनुकूल तथा पर्वों के यथार्थ उद्देश्य को पूर्ण कर सकने वाले पर्वों की वैदिक विधि तथा उसकी व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है । साम्प्रतिक समाज में प्रचलित पर्वों व उत्सवों को हम इस प्रकार विभाजित कर सकते हैं - १.वैदिक (दर्शेष्टि, पूर्णमासेष्टि, चातुर्मास्य आदि) २. प्राकृतिक, यथा- नववर्षेष्टि, मकरसंक्रान्ति आदि, ३. आध्यात्मिक व सांस्कृतिक, यथा- श्रावणी उपाकर्म आदि, ४. ऐतिहासिक, यथा- श्रीराम, श्रीकृष्ण, महर्षि दयानन्द आदि महापुरुषों की जन्मतिथि, वा प्रमुख घटनाएँ आदि, ५. सामाजिक, यथा- २६ जनवरी, १५ अगस्त, आर्यसमाज का स्थापना-दिवस आदि, ६. वैयक्तिक, यथा- जन्मदिन, वैवाहिक वर्षगांठ आदि । इन पर्वों व उत्सवों की विशेषता वा उद्देश्य उन-उन पर्वों के व्याख्यान के अवसर पर हम अवगत करायेंगे । पर्वों के विभागों के मूल उद्देश्य व प्रयोजनों को विशेषरूप से जानने के लिए ''आर्य पर्वपद्धति'' के यशस्वी लेखक श्री पं० भवानी प्रसाद जी की भूमिका (पृष्ठ १८-३२) को देखें ।

सभी भारतीयों से हमारा विनम्र निवेदन है कि वेद और वैदिक परम्परा के विपरीत पर्वों को न मनावें और मानवीयता का हनन करने वाले पर्वों को भी न मनावें, न मनाने देवें। यथा-विशेष सन्दर्भो पर पशु पक्षियों को मारकर बलि चढ़ाकर उनके मांस को खाना, मदिरा आदि का सेवन कर

हर्ष मनाना। ऐसे पर्व भी न मनावें जिससे किसी भी प्रकार का कोई प्रयोजन सिद्ध न हो, साथ में हानियाँ ही हानियाँ सम्भव हों। जैसे- दीपावली पर्व पर पटाखे आदि जलाना, होली पर्व पर रासायनिक रंगों, गंदे कीचड़ आदि से खेलना इत्यादि। पटाखों के जलाने (आतिशबाजी) से धन का अत्यन्त दुरुपयोग होता ही है, साथ में वातावरण का प्रदूषण, प्राणहानि, अङ्गभङ्ग होना, बीमारियों का फैलना, घरों का जलना इत्यादि अनेक हानियां अज्ञात नहीं हैं। यदि कोई कहे कि मांस-मदिरा का सेवन करना, आतिशबाजी करना, होली पर रंगों से खेलना आदि मनोञ्जन के साधन हैं। मनोरञ्जन तो स्वस्थ समाज का लक्षण है। तो हमारा निवेदन है कि मनोरञ्जन स्वस्थ समाज का लक्षण अवश्य है। पर मनोरञ्जन के साधन क्या हों? कैसे हों? इस पर विचार करना होगा। मनोरंजन के साधनों से व्यक्ति का व्यक्तित्व प्रकट होता है। उसके मानसिक प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। जैसे- बालकों के जो खेलने आदि मनोरंजन के साधन हैं, वे बचपना के परिचायक हैं। वे ही साधन युवाओं या वृद्धों के मनोरञ्जक नहीं बन सकते। वैसे ही युवाओं के मनोरञ्जन के साधन बालक वा वृद्धों को आनन्द नहीं दे सकते। इसी प्रवृत्ति को व्यक्त करते हुए किसी कवि ने ठीक ही कहा है-

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा॥

विद्वानों, बुद्धिमानों का काल शास्त्रों को पढ़ने, पढ़ाने आदि में व्यतीत होता है, वही उनका मनोरंजन है। मूर्खों, अज्ञानियों का समय दुर्व्यसन, झगड़े, निद्रा, आलस्य, प्रमादादि में ही बीत जाता है। वे ही उनके मनोरञ्जन के साधन हैं।

हम अपने मानसिक, बौद्धिक प्रवृत्तियों को बदल सकते हैं, यही पर्वों को मनाने का मूल उद्देश्य भी है । प्रवृत्तियों के परिवर्तित होने पर मनोरंजन के साधन भी परिवर्तित होंगे । उससे व्यक्ति तामसिकता से सात्विकता की ओर आकर्षित होगा । अपने धन एवं समय के दुरुपयोग को बन्द कर उसे परहित में, परोपकार में व्यय करेंगे । यही मानवता है, यही धर्म है । इसलिए पर्वों के विशिष्ट सन्दर्भों पर यज्ञों का आयोजन कर प्राणिमात्र का हित किया ही जाता है, उसके साथ धन, धान्य, हिरण्य, गाय आदि पशुओं का दान भी किया जाता है । वही धन धन कहलाता है, जो धर्म में विनियोग किया जाता है । अर्थात् भोग-विलास में विनियुक्त धन धन नहीं कहलाता है । अतः हमें अपनी मानवता की रक्षा के लिए, भारत की गरिमा के लिए प्राचीन वैदिक परम्परा को अपनाना होगा । यही हमारा परम कर्तव्य है । अन्त में पर्व की इतिकर्तव्यता वा सार्थकता का बोध कराने वाले मन्त्र को उद्धृत कर अपने विचारों को विराम देते हैं–

यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः।
सर्वं तदेषां समृधेव पर्व यत्सुवाचो वदथनाध्यप्सु ॥

(ऋ०७.१०३.५)

गुरुजनों के सान्निध्य में रहकर ब्रह्मचारी (ब्रह्म में विचरने वाला शिष्य) पूर्ण विद्वान् होकर, ज्ञानी, विवेकी बनकर प्रजाओं में व अपने शिष्यों में गुरुजनों से प्राप्त वेदज्ञान को और पालन करने योग्य (पर्व) ब्रह्मचर्यादि व्रत आदि को परिव्याप्त करें अर्थात् वेदज्ञान का प्रचार-प्रसार करना प्रत्येक मनुष्य का पर्व (पालन करने योग्य) है, कर्तव्य है ।

नववर्षेष्टि

नवसंवत्सरोत्सव (संवत्सरारम्भ का पर्व)
(चैत्र शुक्ल प्रतिपदा)

प्रातः सूर्योदय से पूर्व ही उठकर गृह का शोधन, गोमयादि से लेपन, पुष्पादि से अलंकरण कर उन्नत प्रदेश में ओम्ध्वज को स्थापित करें। नवीन स्वदेशी वस्त्र पहनकर सपरिवार संकल्पपूर्वक सामान्य यज्ञ सम्पन्न करें। तदनन्तर 'नववर्षेष्टि' सम्बन्धित निम्न निर्दिष्ट विशिष्ट मन्त्रों से आहुतियाँ देवें –

विशेष आहुतियों के मंत्र

ओ३म् संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोसि वत्सरोऽसि। उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्द्धमासास्ते कल्पन्तां मासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्तां संवत्सरस्ते कल्पताम्। प्रेत्याऽएत्यै सं चाञ्च प्र च सारय । सुपर्णचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद ।।स्वाहा।। (यजु०२७.४५)

भावार्थः– जो आप्त मनुष्य व्यर्थ काल नहीं खोते, सुन्दर नियमों से वर्तते हुए कर्त्तव्य कर्मों को करते, छोड़ने योग्यों को छोड़ते हैं उनके प्रभात काल, दिन रात, पक्ष, महीने, ॠतु सब सुन्दर प्रकार व्यतीत होते हैं इसलिये उत्तम गति के अर्थ प्रयत्न कर अच्छे मार्ग से चल शुभ गुणों और सुखों का विस्तार करें। सुन्दर लक्षणों वाली वाणी वा स्त्री के सहित धर्म ग्रहण और अधर्म के त्याग में दृढ़ उत्साही सदा होवें ।।

ओ३म् यमाय यमसूमथर्वभ्योऽवतोकां संवत्सराय पर्यायिणीं परिवत्सरायाविजातामिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायातिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जरां संवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योऽजिनसन्धं साध्येभ्यश्चर्मम्नम् ।।स्वाहा।। (यजु०३०.१५)

भावार्थ – प्रभवादि ६० संवत्सरों में पांच पांच कर १२ (बारह) युग होते हैं उन प्रत्येक युग में क्रम से संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर, ये पांच संज्ञायें हैं, उन सब काल के अवयवों के मूल संवत्सरों को विशेष कर जो लोग यथावत् जान के व्यर्थ नहीं गंवातें वे सब प्रयोजनों की सिद्धि को प्राप्त होते हैं ।।

ओ३म् द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत । तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः ।।स्वाहा।। (ऋ०१.१६४.४८)

भावार्थ– संवत्सररूपी एक कालचक्र में बारह मासरूपी परिधियाँ, तीन प्रमुख (ग्रीष्म, वर्षा, शरद्) ऋतुरूपी नाभियाँ और ३६० दिनरूपी आरें हैं, जो कि अत्यन्त चलायमान हैं । ऐसे कालचक्र को कौन जानता है? अर्थात् उसे जानने वाला कोई विरला ही है । जिस प्रकार कालचक्र निरन्तर गतिमान होता हुआ निर्विकारता से अग्रसर होता है, उसी प्रकार हमें भी निरन्तर गतिशील होते हुए सुख-दुःखादि में एक समान रहते हुए उन्नति के पथ पर आगे बढ़ते रहना चाहिए ।

ओ३म् सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा। त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ।।स्वाहा।। (ऋ०१.१६४.२)

भावार्थ– आदित्यमण्डलरूपी गतिशील रथ का सूर्यरूपी एक ही

चक्र है। उस रथ में सात रंग की किरणरूपी सात घोड़े जुते हुए हैं, जो उस सूर्य को सब जगह ले जाते हैं। सूर्य का यह कालरूपी रथ ग्रीष्म, वर्षा,शरद् ऋतुरूपी नाभियों वाला है, जो कि सदा ही विना रुके चलता रहता है। इसी काल के अन्तर्गत सारे लोक रहते हैं, इस काल के प्रभाव से मुक्त कोई भी नहीं हैं।

ओ३म् द्वादशारं नहि तज्जराय ववर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य। आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥स्वाहा॥ (ऋ०१.१६४.११)

भावार्थ– इस सूर्य का बारह मासवाला चक्र इस विश्व के चारों ओर निरन्तर घूमता रहता है, पुनरपि वह कभी भी टूटता या शिथिल नहीं होता। बारह मासों का वह चक्र महान् अन्तरिक्ष में हमेशा ही नियमित रूप से चलता रहता है। अग्निरूप सूर्य के दिन-रात रूपी ७२० ज़ोड़े पुत्र अर्थात् ३६० दिन और ३६० रात ये सदा ही कार्य करते रहते हैं।

ओ३म् पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्द्धे पुरीषिणम्। अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षळर आहुरर्पितम् ॥स्वाहा॥ (ऋ०१.१६४.१२)

भावार्थ– अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन रूपी पाँच पैरोंवाला तथा बारह महीने रूपी बारह आकृतिवाला तथा जल को बरसानेवाला सूर्य द्युलोक के अर्धभाग में अर्थात् पृथिवी से सुदूर परिभ्रमण कर रहा है। यह सूर्य छह ऋतुरूपी अरों वाले तथा अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, रात, मुहुर्त रूपी सात चक्रों वाले संवत्सररूपी रथ पर आरूढ़ है।

ओ३म् पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा। तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः ।।स्वाहा।।

(ऋ०१.१६४.१३)

भावार्थ– अयनादि पांच अरोंवाले रथरूपी संवत्सर अर्थात् काल में सारे लोक हैं। इस काल से बाहर या इससे परे कोई लोक नहीं हैं। इतने लोकों का भार ढोते रहने पर भी इस रथ का अक्ष न गरम होता है, न क्षीण होता है। यह कालचक्र अनन्त काल से चलता आ रहा है, आगे भी अनन्त काल तक चलता रहेगा, पुनरपि यह क्षीण होनेवाला नहीं है।

ओ३म् सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति। सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा ।।स्वाहा।।

(ऋ०१.१६४.१४)

भावार्थ– उक्त जगत्रूपी चक्र निरन्तर चलते रहने पर भी क्षीण होने वाला नहीं है। उत्पन्न इस विशाल प्रकृति को पाँच तन्मात्राएँ और पाँच महाभूत वहन कर रहें हैं। सूर्य का प्रकाश अन्तरिक्षस्थ जलादि से आच्छादित होकर ही पृथिवी आदि पर व्याप्त होता है। उसी सूर्य के आश्रित होकर सारे लोक स्थित हैं।

ओ३म् संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे। सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ।।स्वाहा।।

(अथर्व०३.१०.३)

भावार्थ– अनन्त परमेश्वरी प्रकृति के सूक्ष्म और स्थूल रूप के ज्ञान से उपकार लेकर हम अपनी सन्तान के सहित धनी, स्वस्थ और चिरंजीवी बने रहें।

ओ३म् यस्मान्मासा निर्मितास्त्रिंशदराः संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः। अहोरात्रा यं परियन्तो नापुस्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ।।स्वाहा।। (अथर्व०४.३५.४)

भावार्थ– परमात्मा ने तीस दिनात्मक मासों का एवं बारह मासात्मक संवत्सर का निर्माण किया। दिन और रात निरन्तर गतिशील होने पर भी परमात्मा को प्राप्त कर नहीं सके। पर मैं (जीवात्मा) वेदज्ञानरूपी आत्मोदन से परमात्मा को प्राप्त कर मृत्युञ्जय बन जाऊँ। इसलिए हमें प्रतिदिन नियम पूर्वक वेदों का स्वाध्याय करना चाहिए।

ओ३म् मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहांहसस्पतये ।।स्वाहा।। (यजु०२२.३१)

भावार्थ– मधु, माधव, शुक्र, शुचि, नभस्, नभस्य, इष, ऊर्ज, सहस्, सहस्य, तपस्, तपस्य मासों में और अधिक मास (मल मास) में भी अर्थात् संवत्सर भर हम यज्ञों का अनुष्ठान नियमपूर्वक करते रहें।

ओ३म् मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू। नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू इषश्चोर्जश्च शारदावृतू सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू ।।स्वाहा।।
(तैत्तिरीय सं० ४.४.११.१)

भावार्थ– मधु(चैत्र), माधव(वैशाख) मास वसन्त ऋतु सम्बन्धित हैं। शुक्र(ज्येष्ठ), शुचि(आषाढ़) मास ग्रीष्म ऋतु सम्बन्धी हैं। नभस्(श्रावण), नभस्य(भाद्रपद) मास वर्षा ऋतु के हैं। इष(आश्वयुज), ऊर्ज(कार्त्तिक) मास शरद् ऋतु के हैं। सहस्(मार्गशीर्ष), सहस्य(पुष्य) मास हेमन्त ऋतु के

हैं। तपस्(माघ) एवं तपस्य(फाल्गुण) मास शिशिर ऋतु के हैं।

ओ३म् ग्रीष्मो हेमन्तः शिशिरो वसन्तः शरद्वर्षाः स्विते नो दधात।
आ नो गोषु भजता प्रजायां निवात इद्वः शरणे स्याम ॥स्वाहा॥

(अथ०६.५५.२)

भावार्थ– ग्रीष्मादि ऋतुएँ हमें उत्तम धनाद्यैश्वर्यों में व उत्तम आचरण में धारण करें अर्थात् हम ऋतुचर्या के अनुकूल ही अपनी दैनिक चर्या को अपनावें। हे ऋतुओं! हमारे घरों में उत्तम गौएँ हों और हम उत्तम सन्तान वाले हों। हम तुम्हारे वातादि उपद्रवों से रहित घर में ही निवास करें।

ओम् वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः।
वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिरः इन्नु रन्त्यः ॥स्वाहा॥

(साम०६१६)

भावार्थ– ''जैसा मन, वैसा विचार'' उक्ति के अनुसार उदास एवं व्याकुलित मन वाले को संसार भी निस्सार एवं दुःखमय दिखाई देता है। वैसे ही ग्रीष्म, शीत एवं वर्षा ऋतुओं से विभिन्न प्रकार से दुःखी होने वाले लोग उन ऋतुओं को कोसते रहते हैं। पर भगवान् के चिन्तन में रमने वाले एक भक्त के शब्दों को देखें- वसन्त ऋतु निश्चित रूप से रमणीय है इसमें सर्वत्र हरित एवं पुष्पित वृक्ष दिखाई देते हैं। ग्रीष्म ऋतु भी निश्चय से रमणीय हैं, जो कि सभी प्रकार के मलिनों को भस्म कर देती है और पसीने को प्रवाहित कर शरीरों का भी शोधन कर लेती है। वर्षा ऋतु भी अत्यधिक आह्लादक है, जो कि भस्मीभूत मलिनों को प्रवाहित कर नगरादियों को शुद्ध कर लेती है और उसके पश्चात् शरद् ऋतु बहुत ही आकर्षणीय है, जो कि वर्षा में निर्मर्याद बढ़े हुए मलिन जल को मर्यादित कर देती है और वनस्पतियों की अतिमात्र उपज को भी मर्यादित कर देती है, इसप्रकार सभी

को विनीत-सा कर देती है। इसके बाद आने वाली हेमन्त ऋतु भी अतिसुन्दर है, लाभप्रद है। ईश्वर निर्मित जगत् सम्पूर्णतया सुन्दर, रमणीय, हितकर एवं शुभ है। अशुभ, अमंगल, अहित जैसा इस जगत् में कुछ भी नहीं है।

ओ३म् वसन्तेनऽऋतुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुताः ।
रथन्तरेण तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ।।स्वाहा।।

(यजु० २१.२३)

भावार्थ– जो वसन्त ऋतु के समान अपने जीवन में ज्ञान-विज्ञान के पुष्पों को विकसित कर सदा नव-नूतनत्व को, सद्गुणों को धारण कर दिव्यता को प्राप्त कर लेते हैं और अपने ही अन्तरात्मा के चिन्तन में वसते हैं अर्थात् अपने जीवन में वसन्त ऋतु को लाते हैं, ऐसे वसु ब्रह्मचारी व प्रथम कक्ष के विद्वान् लोग तीनों कालों में प्रशंसित होते हैं। अपने पराक्रम एवं तेज से जीवात्मा में ज्ञानरूपी हवि तथा उत्कृष्ट जीवन को धारण करते हैं।

ओ३म् ग्रीष्मेण ऋतुना देवा रुद्राः पञ्चदशे स्तुताः ।
बृहता यशसा बलं हविरिन्द्रे वयो दधुः ।।स्वाहा।।

(यजु०२१.२४)

भावार्थ– जो ग्रीष्म ऋतु के सूर्यसदृश अपने प्रचण्ड ज्ञान के प्रताप से आन्तरिक मलों को भस्म कर देते हैं और ज्ञान, शान्ति एवं आनन्दरूपी रस को ग्रहण कर लेते हैं अर्थात् अपने जीवन में ग्रीष्म ऋतु को लाते हैं, ऐसे दिव्यता के प्राप्त किये हुए रुद्रगण अर्थात् अपने आसुरीभावों को सन्तप्त करने वाले रुद्र ब्रह्मचारी व मध्यम कक्ष के विद्वान् लोग पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पांच कर्मेन्द्रियों एवं पांच प्राणों को स्वाधीन करने में प्रशस्त होते हैं तथा महान् यश, बल, जीवन रूपी हवियों (ग्रहण करने योग्यों) को अपने में धारण करते हैं।

ओ३म् वर्षाभिर्ऋतुनादित्या स्तोमे सप्तदशे स्तुताः।
वैरूपेण विशौजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ।।स्वाहा।।

(यजु०२१.२५)

भावार्थ– जो वर्षा ऋतु के समान सञ्चित ज्ञान को सभी मनुष्यों में बरसाते हैं और उनके अज्ञान को, कष्टों को दूर कर आनन्दित करते हैं अर्थात् जो अपने में वर्षा ऋतु को लाते हैं, ऐसे आदित्य देव अर्थात् आदित्य ब्रह्मचारी व उत्तम विद्वज्जन स्तुति करने योग्य सूक्ष्मशरीर (५ ज्ञानेन्द्रिय+५कर्मेन्द्रिय+५प्राण+मन+बुद्धि) में प्रशस्त होते हैं तथा विभिन्न रूपवाले व स्वभाव वाले प्रजा से एवं ओज से अपने में श्रेष्ठ जीवन को धारण करते हैं।

ओ३म् शारदेन ऋतुना देवाऽएकविंशऽऋभव स्तुताः।
वैराजेन श्रिया श्रियं हविरिन्द्रे वयो दधुः ।।स्वाहा।।

(यजु०२१.२६)

भावार्थः– जैसे शरद् ऋतु वर्षा ऋतु के मेघों को छिन्न-भिन्न कर आकाशादि को निर्मल बनाता है, जल को शुद्ध करता, अन्न और फलों की वृद्धि करता है, वैसे ही ऋभव देव अर्थात् ज्ञानज्योति से प्रदीप्त अन्तः करणवाले (ऋतेन भान्ति, ऋतेन भवन्तीति वा- निरुक्त ११.१६) मेधावी जन अथवा ऋत में ही रमने वाले विद्वान् २१ तत्वों (संवत्सर के १२ मास, ६ ऋतु एवं ३ लोक – द्र० ऐ० ब्रा० १.३०, श० ब्रा० १.३.५.११) को जानकर लोगों में व्याप्त मेघरूपी आसुरीभावों को विनष्ट कर उनमें ज्ञानज्योति को प्रदीप्त कर उनके अन्तःकरण को पवित्र बनाते हैं और उन्हें सुख शान्ति से परिपूर्ण कर देते हैं। इस प्रकार अपने जीवन में शरद् ऋतु को लाने वाले वे विद्वान् जनता में अत्यन्त प्रशंसित होते हैं तथा विशेषरूप से प्रकाशित ऐश्वर्य को एवं

ग्रहण करने योग्य दीर्घ जीवन को प्राप्त होते हैं ।

ओ३म् हेमन्तेनऽऋतुना देवास्त्रिणवे मरुत स्तुताः।
बलेन शक्वरीः सहो हविरिन्द्रे वयो दधुः।। स्वाहा।।

(यजु०२१.२७)

भावार्थ– हेमन्त ऋतु अपने तीव्र शीत से प्राणियों को कष्ट देता है और जल-प्रवाह को संकुचित करता है, वैसे ही मरुद् देव अर्थात् ऋत्विग्गण व याज्ञिक लोग (मरुत् इति ऋत्विङ्नाम- नि०२.१९) अपनी और यजमानों की दुर्भावनाओं के प्रति अत्यन्त कठोरता दिखाते हैं और अपने एवं यजमानों के मानसिक प्रवाह को, चञ्चलता को संकुचित करते हैं, अंकुश लगाते हैं अर्थात् वे देव अपने जीवन में हेमन्त ऋतु को प्रदर्शित करते हैं । इस प्रकार वे (त्रिणव) धर्म, अर्थ, कामों में उत्तम गतिवाले होते हुए या ज्ञान, कर्म, उपासनाओं में स्तुत्य होते हुए लोक में प्रसिद्धि को पाते हैं । तत्परिणामतः वे ग्रहण करने योग्य बल, शक्ति-सामर्थ्य, सहनशीलता को धारण कर सार्थक जीवन वाले होते हैं ।

ओ३म् शैशिरेणऽऋतुना देवास्त्रयस्त्रिंशेऽमृताऽस्तुताः।
सत्येन रेवतीः क्षत्रं हविरिन्द्रे वयो दधुः ।।स्वाहा।।

(यजु०२१.२८)

भावार्थ– जैसे शिशिर ऋतु वृक्षों के पत्तों को गिरा कर नये पत्तों को उत्पन्न करने के निमित्त वृक्षों में नये रस का सिञ्चन करता है, वैसे ही अमृत देव अर्थात् विषय-वासनाओं के पीछे न मरने वाले विद्वान् वा रोगों से आक्रान्त न होने वाले मनीषी भी अपने सभी बन्धनों को शिथिल कर अपने में अमरत्व को प्राप्त करने में समर्थ रस का, शक्ति का सिञ्चन कर अपने जीवन में शिशिर ऋतु को लाते हैं । इस प्रकार वे अपने मस्तिष्करूप

द्युलोक, हृदयरूप अन्तरिक्षलोक एवं अवशिष्ट शरीररूप पृथिवीलोक में ग्यारह-ग्यारह देवों (दिव्यगुणों) को धारण कर अपने शरीर को तैंतीस देवों के निवास से देवपुरी बना लेते हैं। जिससे वे अत्यन्त स्तुत्य बनते हैं। वे सत्य के मार्ग से ही धनाद्यैश्वर्यों को प्राप्त करते और आत्मिक बल, अन्न एवं उत्कृष्ट जीवन को भी प्राप्त करते हैं।

ओ३म् ऋतवस्तऽऋतुथा पर्व शमितारो विऽशासतु ।
संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ।।स्वाहा।।

(यजु०२३.४०)

भावार्थ– गत मन्त्रों में वर्णित (ऋतुथा) ऋतुओं के अनुकूल आचार, विचार, और व्यवहार करने से वे ऋतुवें और ऋतुओं के पर्व (सन्धिकाल) दिव्यता एवं स्वस्थता के अभिलाषियों को शान्ति को प्रदान करनेवाली होकर मार्गदर्शक बनती हैं। अभीष्ट कामना को प्रदान करने में समर्थ संवत्सर की तेजस्विता से एवं ऋत्वनुकूल कर्मों (शमी कर्माणि-निघ०२.१, निरु०११.१६) से तुझे सुख और शान्ति प्राप्त हों।

ओ३म् अर्धमासाः परूंषि ते मासा ऽआच्छ्यन्तु शम्यन्तः।
अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टं सूदयन्तु ते ।।स्वाहा।।

(यजु०२३.४१)

भावार्थ– शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष और उनके पर्व (संन्धियाँ) एवं मास तुझे शान्ति प्रदान करते हुए आत्मिक, मानसिक और शारीरिक दोषों को दूर करें। दिन-रात अर्थात् सदा ही ये सभी प्रकार के प्राण ऋत्वनुकूल चलने वाले की न्यूनताओं को नष्ट करें।

ओ३म् इदावत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय कृणुता बृहन्नमः। तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ।।स्वाहा।। (अथर्व०६.५५.३)

भावार्थ– प्रभव आदि साठ संवत्सरों में बारह युग रहते हैं । प्रत्येक युग में संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर, इद्वत्सर नामक पांच-पांच वर्ष रहते हैं[1]। इन वर्षों का परिज्ञान प्राप्त कर हम उनमें प्रचुर मात्रा में अन्नादियों[2] को उत्पन्न करें और उन नूतन धान्यों से ऋत्वनुकूल यज्ञ-यागों का अनुष्ठान कर आनन्दित हों ।

इन मंत्रो से आहुतियाँ देकर पूर्णाहुति एवं शान्तिपाठ से अग्निहोत्र समाप्त करें। तत्पश्चात् उपस्थित सभी जन परस्पर प्रीतिपूर्वक नये वर्ष की शुभकामनाएँ ज्ञापित करें । विद्वानों से उपदेश ग्रहण कर विद्वान्, बन्धु, मित्रादियों को भोजनादि के द्वारा यथोचित सत्कार करें ।

---

१. अथ खल्वयाने द्वे युगपत् संवत्सरो भवति, ते तु पंच युगमिति संज्ञां लभन्ते (सुश्रुत्०सूत्र०६.९), संवत्सराः पञ्च युगम् (महा०सभा०११.३८) ।
२. नमः अन्ननाम- (निघण्टु-२.७) ।

मंगलमय हो नव संवत्सर

[स्व. राधेश्याम 'आर्य' विद्यावाचस्पति, सुलतानपुर (उ.प्र.)]

मंगलमय हो नव संवत्सर, आए नया विहान,
महिमण्डल पर शान्ति सुखों का, छाए नया वितान ।

प्रेम-दया-ममता-समता-सरसता-हो संचारित,
मनाव में मानवता पूरित सद्‌गुण हों संपादित ।

सत्य धर्म की विजय पताका अवनी पर लहराए,
नव संवत् में ईश-कृपा से,जन-जन में नवजीवन आए ।

नैतिकता की,सच्चरित्र की बजे पुनः शहनाई,
जाग्रत हो फिर राम-कृष्ण के पुत्रों की तरुणाई ।

महिमण्डल पर वेद-रश्मियां निकलें पुण्य प्रखर,
पूर्ण धरा के लिए बने यह, मंगलमय संवत्सर ।।

नवसंवत्सरोत्सव

[पूर्ण प्रकाश मित्तल, बिजनौर, (उ.प्र.)]

नववर्ष की पावन वेला में, जीवन सफल बनाओ ।
नवचेतना मन में जगा, कर्तव्य-पथ पर बढ़ जाओ ।
भाग्य भरोसे कभी रहो ना, भाग्यनिर्माता स्वयं बनो ।
पल-पल अपनी मेहनत से, इतिहास देश का स्वयं रचो ।
युग बदलो अत्याचार का, सुख-शान्ति भू पर लाओ ।
नववर्ष की पावन वेला में, जीवन सफल बनाओ ॥
दो सहारा असहाय जीवन को, जो बाट जोहते सहारों की ।
मानवता मिटे ना जग से, भावना मिटे दानवता की ।
अपनेपन की गंग बहे भारत में, अलगाववाद का नाम मिटाओ ।
नववर्ष की पावन वेला में, जीवन सफल बनाओ ॥
हर पग तुम्हारा छाप छोड़े,निर्माण कार्य में जुट जाओ ।
भारत के कण-कण को फिर से,सोना सा चमकाओ ।
सुख का दीप जले घर-घर में, एसी भावना जगाओ ।
नववर्ष की पावन वेला में, जीवन सफल बनाओ ॥
राष्ट्रभावना लोप हो रही, आर्यावर्त के जीवन से ।
सेवा भाव मिटा जन-जन का, ज्ञान सिरमौर भारत से ॥
जागो भारतवासी, अपनी आन बचाओ ।
नववर्ष की पावन वेला में, जीवन सफल बनाओ ॥
वैदिक संस्कृति आज धरा से, जाने को है आर्यवीरों ।
भ्रष्टाचारी पाश्चात्य सभ्यता का, ताण्डव है आर्यवीरों ॥
वेद-ज्ञान अमृतधारा से अंधविश्वास मिटाओ ।
नववर्ष की पावन वेला में, जीवन सफल बनाओ ॥

नवसंवत्सर

[पूर्ण प्रकाश मित्तल, बिजनौर, (उ.प्र.)]

नव वर्ष की प्रथम किरण, हर प्राणी में नवचेतना भर दे ।
आशा हो पूरी हर प्राणी की, जन-जन में उत्साह भर दे ।।
हर ओर प्रसन्नता का राज हो, दुःख से भटके ना कोई प्राणी ।
जीवन के किसी मोड़ पर, निराश न हो कोई प्राणी ।।
जागो और जगाओ जगत को, जीवन को खुशियों से भर दे ।
नव वर्ष की प्रथम किरण, हर प्राणी में नव चेतना भर दे ।।
थके न कोई पथिक, अपनी जीवन पथ पर ।
हर प्रभात में उठ कर बढ़े, अविरल अपने पथ पर ।।
भाग्य पर न करो भरोसा, कर्म नित करते चलो ।
कर्मफल मिलता सदा ही, उत्तम कर्म करते चलो ।।
पुष्प खिलेंगे हर मार्ग में, शूल अवनि से हटा दे ।
नव वर्ष की प्रथम किरण, हर प्राणी में नव चेतना भरदें ।।
आतंकवाद की काली छाया, नष्ट कर रही जन जीवन को ।
अलगाववादी भावना रोज-रोज, तोड़ रही है भारत को ।।
राष्ट्र भावना जगा हृदय में, भारतीयों सब मिलजाओ ।
अपनेपन का भाव जगा कर, प्रेम के दीप जलाओ ।।
कोई गद्दार आग लगाए न, गद्दारों को देश से भगा दे ।
नव वर्ष की प्रथम किरण, हर प्राणी में नव चेतना भर दे ।।
रूढ़िवादिता और पाखण्डपन का, चहुँ ओर जाल बिछा है ।
आज हजारों बाल भगवानों के, चेलों का जाल बिछा है ।।
वैदिक संस्कृति आज धरा से, लोप होती जा रही ।
नंग-उघाड़ पाश्चात्य सभ्यता, चहुँ ओर छा रही ।।
वेद ज्ञान का दीप जलाकर, 'पूर्ण प्रकाश' से अवनि भर दे ।
नव वर्ष की प्रथम किरण, हर प्राणी में नव चेतना भरदे ।। ■■■

ऋतुचर्या

-महर्षि दयानन्द सरस्वाती

मनुष्यों को चाहिए कि शुद्ध पदार्थों का ऋतु-ऋतु में होम किया करें, जिससे वह द्रव्य सूक्ष्म हो और क्रम से अग्नि, सूर्य तथा मेघ को प्राप्त होके वर्षा के द्वारा सब का उपकारी होवें । (यजु०२९.३५)

जो मनुष्य सब ऋतुओं में समय के अनुसार आहार-विहार से युक्त होके विद्या, योगाभ्यास और सत्संगों का अच्छे प्रकार सेवन करते हैं, वे सब ऋतुओं में सुख भोगते हैं और इनको कोई चोर आदि (रोग) भी पीड़ा नहीं दे सकता । (यजु०१०.१४)

मनुष्यों को चाहिए कि धर्मात्माओं के मार्ग से चलते हुए शारीरिक, वाचिक और मानसिक तीनों प्रकार के सुखों को प्राप्त होवें और जिसमें कामना पूरी हो, वैसा प्रयत्न करें । जैसे वसंतादि ऋतु अपने क्रम से वर्तते हुए अपने-अपने चिह्न प्राप्त करते हैं, वैसे ऋतुओं के अनुकूल व्यवहार करके आनन्द को प्राप्त होवें । (यजु०१३.३१)

जो मनुष्य युक्त आहार-विहार करने वाले जितेन्द्रिय होते हैं, वे सब ऋतुओं में पाँचों इन्द्रियों से सुख को प्राप्त होते हैं । (ऋ०२.१३.१०)

मनुष्य को योग्य है कि ऋतुओं के अनुकूल क्रिया से अग्नि, जल और अन्न का सेवन करके राज्य और पृथिवी की सदैव रक्षा करें, जिससे सब सुख को प्राप्त होवें । (यजु०१३.४३)

इस संसार में मनुष्य का जन्म पाके स्त्री तथा पुरुष विद्वान् होकर जिन ब्रह्मचर्य-सेवन, विद्या और अच्छी शिक्षा के ग्रहण आदि शुभ गुण कर्मों में आप प्रवृत्त होकर जिन अन्य लोंगों को प्रवृत्त करें, वे उनमें प्रवृत्त होकर परमेश्वर से लेकर पृथिवीपर्यन्त पदार्थों के यथार्थ विज्ञान से उपयोग ग्रहण करके सब ऋतु में आप सुखी रहें और अन्यों को सुखी रखें । (यजु०१४.७)

वसंत ऋतु

जब वसंत ऋतु आता है, तब पक्षी भी कोमल मधुर-मधुर शब्द बोलते और अन्य सब प्राणी आनन्दित होते हैं। (यजु०१३.२८)

जब वसन्त ऋतु आता है, तब पुष्प आदि के सुगन्धों से युक्त वायु आदि पदार्थ होते हैं, उस ऋतु में घूमना-डोलना पथ्य होता है, ऐसा निश्चित जानना चाहिए। (यजु०१३.२७)

हे मनुष्यों ! तुम लोग वसन्त ऋतु को प्राप्त होकर जिस प्रकार के पदार्थों के होम से वनस्पति आदि कोमल गुणयुक्त हों, ऐसे यज्ञ का अनुष्ठान करो और इस प्रकार वसन्त ऋतु के सुख को सब जने तुम लोग प्राप्त होओ। (यजु०१३.२९)

जो मनुष्य लोग रहने के हेतु दिव्य पृथिवी आदि लोकों वा विद्वानों की वसन्त में संगति करें, वे वसन्त संबन्धी सुख को प्राप्त होवें। (यजु०२१.२३)

राजादि मनुष्यों को चाहिए कि वसन्त ऋतु में पहिले घोड़ों को शिक्षा दें और रथियों को रथों पर नियुक्त करके शत्रुओं को जीतने के लिए यात्रा करें। (यजु०१३.३६)

ग्रीष्म ऋतु

मनुष्य वसन्त और ग्रीष्म ऋतु के बीच जलाशयस्थ शीतल स्थान का सेवन करें, जिससे गर्मी से दुःखित न हों और जिस यज्ञ से वर्षा भी ठीक-ठीक हो और प्रजा आनन्दित हो, उसका सेवन करो (यजु०१३.३०)।

हे मनुष्यों! तुम लोग जो पृथिवी आदि पञ्चभूतों के शरीरसम्बधी वा मानस अग्नि है कि जिनके विना ग्रीष्म ऋतु नहीं हो सकता, उनको जान और उपयोग में लाके सब प्राणियों को सुख दिया करो (यजु०१४.६)।

वर्षा ऋतु

हवन और सूर्य रूपादि अग्नि के ताप से सब गुणों से युक्त अन्नादि से संसार की स्थिति करने वाली वर्षा होती है। उस वर्षा से सब औषधि आदि उत्तम पदार्थ युक्त पृथिवी होती और सूर्यरूप अग्नि से ही प्राणियों के विश्राम के लिए रात्रि होती है। (यजु०२३.१२)

सब मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों के समान वर्षा ऋतु में वह सामग्री ग्रहण करें, जिस से सब सुख होवें। (यजु०१४.१५)

शरद् ऋतु

हे मनुष्यों ! जो शरद् ऋतु में उपयोगी पदार्थ हैं, उनको यथायोग्य शुद्ध करके सेवन करो। (यजु०१४.१६)

जो लोग अच्छे पथ्य करने हारे शरद् ऋतु में रोगरहित होते हैं, वे लक्ष्मी (ऐश्वर्य) को प्राप्त होते हैं। (यजु०२१.२६)

हेमन्त ऋतु

विद्वानों को योग्य है कि यथायोग्य सुख के लिए हेमन्त ऋतु में पदार्थों का सेवन करें और वैसे ही दूसरों को भी सेवन करावें। (यजु०१४.२७)

जो लोग सब रसों को पकाने हारे हेमन्त ऋतु में यथायोग्य व्यवहार करते हैं, वे अत्यन्त बलवान् होते हैं। (यजु०२१.२७)

दिनचर्या

प्रातः समय की वेला सोते हुए हम लोगों की आयु को धीरे-धीरे अर्थात् दिन-दिन काटती है, ऐसा जानकर और आलस्य छोड़कर हम लोगों

को रात्रि के चौथे प्रहर में जाग के विद्या, धर्म और परोपकार आदि व्यवहार में नित्य उचित वर्ताव रखना चाहिए। (ऋ०१.९२.१०)

जो मनुष्य रात्रि के चौथे प्रहर में जागकर शयन पर्यन्त व्यर्थ समय को नहीं जाने देते वे सुखी होते हैं, अन्य नहीं। (ऋ०१.११३.५)

जो मनुष्य उषा से पहले शयन से उठ आवश्यक कर्म करके परमेश्वर का ध्यान करते हैं, वे बुद्धिमान् और धार्मिक होते हैं। (ऋ०१.११३.११)

हे स्त्री-पुरुषों ! आप लोग रात्रि के चोथे प्रहर में उठ और आवश्यक कृत्य करके वाहन वा पैरों से सूर्योदय से पहले शुद्ध वायु देश में भ्रमण करें तो आप लोगों को रोग कभी न प्राप्त होवें। (ऋ०४.१४.४)

दिन और रात्रि के सन्धि में अर्थात् सूर्योदय और अस्त के समय में परमेश्वर का ध्यान और अग्निहोत्र अवश्य करना चाहिए।(सत्यार्थ०समु-४)

जीवन की सफलता

हे मनुष्यों ! तुम लोगों को चाहिए कि इस जगत् में मनुष्य का शरीर धारण कर विद्या, उत्तम शिक्षा, अच्छा स्वभाव, धर्म, योगाभ्यास और विज्ञान का सम्यक् ग्रहण करके मुक्ति-सुख के लिए प्रयत्न करो, यही मनुष्य जीवन की सफलता है ऐसा जानो। (यजु०३५.२२)

नववर्ष का हर्ष कब, कैसे और क्यों?

जनवरी –१ का आगमन होते ही छोटे-बड़े, प्रबुद्ध-सामान्य, स्त्री-पुरुष आदि सभी हर्ष-उल्लास के साथ नये वर्ष के स्वागत की तैयारी करते हैं। नये वर्ष की शुभकामनाओं को ज्ञापित करने हेतु चारों ओर बैनर, बोर्ड आदि लगाये जाते हैं। रंगोली, रंगबिरंग के लाईट, फूल-माला आदियों से अलंकरण किये जाते हैं। रात भर जाग कर पुराने वर्ष का अन्तिम क्षण बीतकर नये वर्ष का आदि क्षण उपस्थित होते ही आबालवृद्ध सभी जन नाच गान, आतिशबाजी, बैण्ड-बाजा आदि ध्वनियों से सभी दिशाओं को गूँजायमान करते हुए नये वर्ष का बड़ा स्वागत करते हैं और अपरिमित आनन्द का अनुभव करते हैं।

हे भारत माता के मानस वीर सपूतों! क्या यह जनवरी-१ नये वर्ष का आरम्भ है? क्या इसी दिन नये वर्ष का आरम्भ होता है? एक बार गम्भीरता से अपनी अन्तरात्मा में विचार करना। इस समय प्रचलित कालेन्द्र (कालेन्दर–कैलेन्डर) = कालान्तर ईसा से सम्बन्धित है, यह सर्वविदित है। क्या ईसा से पूर्व अपने भारतदेश का चरित्र, परम्परा, संस्कृति नहीं थी? यदि थी तो ईसा से पूर्व के लोग किस दिन नये वर्ष को मनाते रहे होंगे? यह विचार करना होगा, आत्ममन्थन करना होगा। हम यहाँ केवल प्रमुख विषयों के साथ दिग्दर्शन करा रहे हैं। सुधी पाठक वृन्द स्वयं विचार कर निर्णय लें और तथ्य (सत्य) को सबके सामने प्रस्तुत करें।

यूरोप देशों में पहले ओलम्पियन संवत्सर प्रचलित था। वही संवत्सर ईसा से ७५३ वर्ष पूर्व रोंमनों का राज्य स्थापित होने के पश्चात् रोमनों के प्रथम राजा रोमलुस् के काल में रोमन संवत्सर के रूप में परिवर्तित हो गया। तब उस संवत्सर में केवल दस मास (मार्च से दिसम्बर तक) और

३०४ दिन ही थे उन मासों के नाम रोंमन देवताओं और महाराजाओं के नाम से रखे गये थे। जैसे कि 'मार्स' इस रोमन युद्ध देवता के नाम से 'मार्च' मास, अट्लस देवता की कुमारियाँ ''मलिका मई और मलिका जौन'' के नामों से क्रमशः 'मई', 'जून' मासों के नाम रखे गये। रोमन सम्राट् 'जूलियस सीजर' एवं उनके पौत्र 'आगस्टस सीजर' के नामों से 'जुलाई'और 'अगस्त' मास प्रचलित किये गये। इस प्रकार प्रथम मास मार्च से छटे मास अगस्त तक के मासों का नामकरण सम्पन्न हुआ। उनके पश्चात् के मास क्रम- बोधक शब्दों से प्रसिद्ध किये गये। जैसे कि सप्तम (सातवाँ) मास का नाम सेप्टम्बर (September), अष्टम (आठवां) मास का नाम अक्टोबर (October), नवम (नौवाँ) मास का नाम नवम्बर (November), दशम (दसवाँ) मास का नाम दिसम्बर (December) रखा गया। यहाँ यह ध्यातव्य है कि सेप्टम्बर आदि शब्द सप्तमादि संस्कृत शब्दों के विकृत रूप हैं। सप्तम अम्बर(=सातवाँ आकाश) से सेप्टम्बर बना,वैसे ही अष्टम अम्बर (=आठवाँ आकाश) से अक्टोबर, नवम अम्बर (=नौवाँ आकाश) से नवम्बर और दशम अम्बर से दिसम्बर (दशम्बर) शब्द बना। सप्तमाम्बर आदि शब्द आकाशस्थ नक्षत्रादियों की विशेष अवस्थाओं के बोधक हैं।

ये मार्च आदि दस मास ही ५३ वर्षों तक व्यवहृत होते रहे। ईसा से ७०० वर्ष पूर्व रोमनों का द्वितीय राजा ''नूमा पोम्पिलियस (Numa Pompilius)'' ने 'जोनस' नामक रोमन देवता के नाम से जनवरी (January) मास आरम्भ किया, साथ में फिब्रवरी (February) मास को भी आरम्भ किया, जिसका अर्थ है 'प्रायश्चित्त मास'। पांचवाँ रोमन सम्राट् 'एत्रुस्कान् ताक्किनियूस् प्रिस्कियूस्'(Etruscan Tarquinius Priscius, 616-579 ईसा पूर्व) ने रोमन रिपब्लिकन् कैलेण्डर मुद्रित किया था, जिसमें जनवरी को प्रथम स्थान दिया गया था। इन दो मासों को दसवें मास दिसम्बर के बाद जोड़ा जाता तो बुद्धिमत्ता का परिचायक होता। परन्तु इन्हे आदि में जोड़ने से सातवाँ मास सेप्टम्बर नौवाँ मास हो गया, वैसे ही आठवाँ

मास ओक्टोबर दसवाँ, नौवाँ मास नवम्बर ग्यारहवाँ एवं दसवाँ मास दिसम्बर बारहवाँ मास हो गया। जिससे सेप्टम्बर (सप्तम अम्बर=सातवाँ आकाश) आदियों का अर्थ निरर्थक सिद्ध हुए। अंग्रेजी में 'मार्च' का अर्थ है– 'गमन-आगमन' अर्थात् पुराना संवत्सर व्यतीत होकर नया संवत्सर आ गया है। यह अर्थ भी जनवरी, फरवरी मासों को आदि में जोड़ने से व्यर्थ हो गया। अज्ञानता एवं अविवेकता के लिए यह एक ज्वलन्त उदाहरण है। साथ में यहाँ यह भी विचार करना होगा कि फरवरी मास में २८ या २९ही दिन क्यों? काल गणना में यदि कहीं कम-ज्यादा हो जाता है तो, न्यूनता रह जाती है तो उसकी पूर्ति अन्त में की जानी चाहिए, फरवरी मास यदि अन्त में रहता तो संवत्सर भर की न्यूनता को पूर्ण करने के लिए २८ या २९ दिन रखे गये हैं, ऐसा समझ में आता और फरवरी का अर्थ (प्रायश्चित्त) भी सार्थक होता। पर संवत्सर के बीच में अर्थात् दूसरे मास में न्यूनता की पूर्ति (Adjustment) करना कहाँ की बुद्धिमत्ता है? इससे स्पष्ट है कि जनवरी एवं फरवरी दोनों मास दिसम्बर के बाद ही जोड़ने योग्य हैं, न कि मार्च के आदि में।

भारतीय प्राचीन परम्परा के अनुसार नया संवत्सर चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को आरम्भ होता है। जो कि मार्च के अन्त में या अप्रैल के आदि में आता रहता है। इससे ज्ञात होता है कि मार्च-२५ से वर्ष को आरम्भ करने की रोमन परम्परा एवं भारतीय परम्परा में अत्यन्त समानता है। मार्च से संवत्सर को आरम्भ करना भारतीय संस्कृति का अनुकरण होता है। अतः अपने क्रैस्तव सम्प्रदाय को वैदिक संस्कृति से अलग करने के दुरुद्देश्य से रोमन सम्राट् नूमा पोम्पिलियस् ने जनवरी और फरवरी मासों को मार्च से पूर्व जोड़ा है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई समुचित कारण नहीं है। उससे रोमन संवत्सर ३०४ दिन के स्थान पर (३०४+३१+२८=) ३६३ दिन में रूपान्तरित हो गया। इनमें कुछ मास ३० दिन, कुछ ३१ दिन तथा फरवरी मास २८या २९ दिन के रूप में विभक्त हैं। जूलियस् सीजर और आगस्टस्

सीजर के नामों वाले जुलाई एवं अगस्त मासों को क्रमशः ३१-३१ दिन के रूप विभक्त किये गये। इस प्रकार यहां यह स्पष्ट हो जाता है कि संवत्सर का आद्य दिन, मासों का विभाग, परिमाण, नाम एवं क्रम ये सब स्वार्थवश वा अन्य दुरुद्देश्य के कारण अपने मतोन्माद से समाज पर बलात् थोपे गये हैं।

रोमन कैलैण्डर के बारह महिनों के नाम व परिमाण इस प्रकार थे-

Januarius (31)	Maius (31)	September (30)
Februarius (28/29)	Junius (30)	October (31)
Martius (31)	Quinctilis (31)	November (30)
Aprilis (30)	Sextilis (30)	December (30)

ईसा से ४४ वर्ष पूर्व जूलियस् सीजर् (Julius Caesar) के सम्मान में Quinctilis मास के नाम को Julius (July) के रूप में परिवर्तित किया गया । ईसा से ८ वर्ष पूर्व सम्राट् अगस्टस् सीजर ने स्वयं ही Sexitilis मास के नाम को अपने नाम से अर्थात् Augustus (August) नाम से प्रसिद्ध कर दिया। पहले Sextilis मास में तीस ही दिन थे, पर अपने नामवाला मास जूलियस् सीजर के नाम से प्रसिद्ध मास Julius (July) के समान रहना चाहिए, ऐसा विचार कर तीस दिन के बदले में August को एकत्तीस दिन का बना दिया । इस एक दिन के आधिक्य को फिब्रवरी मास में एक दिन घटाकर २९ दिन के बदले में २८ दिन कर दिया इस कैलेण्डर के कुछ दोषों को दूर कर 'पोप ग्रेगरी' ने एक विनूतन कैलेण्डर को प्रकाशित किया। यही कैलेण्डर सन् १५८२ से कुछ प्रमुख देशों में अपनाया गया । यह ग्रेगारियन् कैलेण्डर किस-किस देश में कब-कब अपनाया गया था, इसका स्पष्टीकरण निम्नप्रकार –

संवत्सर (ईस्वी सन्)	देशों के नाम
१५८२	– फ्रान्स, इटली, लक्सेम्बर्ग, पुर्तगाल, स्पेन ।
१५८३-१८१२	– स्विट्जर्लैण्ड ।
१५८४	– जर्मन (रोमन कैथोलिक), बेल्जियम और नेदर्लैण्ड के कुछ प्रान्तों में
१५८७	– हांगरी ।
१६९९-१७००	– डेन्मार्क, डच्, जर्मन प्रोटेस्टण्ट ।
१७७६	– जर्मनी ।
१७५२	– ब्रिटेन, अमेरिका ।
१७५३	– स्वेड़ेन
१८७३,१८७५	– जापान, मिस्र
१९१२-१९१७	– अल्बानिया, बुल्गारिया, चीन, एस्तोनिया, लातविया, लिथुआनिया, रोमानिया, तुर्कि, युगोस्लाविया
१९१८,१९२३	– सोवियत रूस, ग्रीस

भूगोल और खगोल के विज्ञान से, प्राकृतिक घटनाओं से, सूर्य-चन्द्र-ग्रह-नक्षत्रों की स्थितियों से ग्रेगारियन कैलेण्डर के मासों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं दीखता। इसलिए जनवरी और फरवरी मासों को मार्च से पूर्व जोड़ने पर भी जनवरी–१ को संवत्सरादि के रूप में लोगों ने नहीं स्वीकारा। मार्च–२५ को ही संवत्सरादि अर्थात् नये वर्ष के रूप में मानते हुए आये हैं। सन् १५८२ से जनवरी– १ नये वर्ष के रूप में व्यवहार में आया, उससे पूर्व नहीं ।

जनवरी –१ को नये वर्ष के रूप में मनाने की पद्धति को अंग्रेजियों ने भारत में भी सन् १७५२ में आरम्भ करवाया। भारतीय परम्परा को नष्ट करने के लिए बहुत से षड्यन्त्र करने पर भी वित्तसंवत्सर (Financial

Year) और शिक्षा संवत्सर (Educational Year) आज तक अप्रैल–१ से ही आरम्भ होते हैं। इन्हे बदल नहीं पाये। ये दोनों ही संवत्सर भारतीय नये संवत्सर के अनुकूल हैं, साथ में वैज्ञानिक और बुद्धिसंगत हैं। पर अप्रैल-१ को मूर्खदिवस (Foolish day) के रूप में प्रचलन कराया गया। इसका कारण यह है कि – सन् १५८२ में फ्रांस के दसवाँ राजा 'चार्ल्स' ने अपने देश में जनवरी–१ को संवत्सरादि के रूप में घोषणा की, पर वहाँ की जनता राजाज्ञा को स्वीकार न कर अप्रैल–१ को ही नया संवत्सर मनाती रही। इससे क्रुद्ध चार्ल्स ने राजाज्ञा का उल्लंघन करने वाले सभी को मूर्ख घोषित किया। उसके बाद धीरे-धीरे वहाँ की जनता को जनवरी–१ को ही संवत्सरादि के रूप में मानना पड़ा। इस सफलता को देखकर, पुनः भविष्य में कोई भी अप्रैल–१ को नया वर्ष न मनावें, इस उद्देश्य से चार्ल्स ने अप्रैल–१ को मूर्खदिवस के रूप में घोषणा करवाई। हम भारतीय इस सच्चाई को न जानते हुए जन्मान्धों के समान भेड़ चाल से उनका अनुकरण करते जा रहे हैं और विना किसी राजाज्ञा के ही खुशी से, आनन्द से एक दूसरे को अप्रैल–फूल (मूर्ख) बनाते जा रहे हैं। ऐसा दृष्टान्त संसार में अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा। प्रत्येक मनुष्य व समाज अपने-आप को बुद्धिमान्, मेधावी तथा महान् मानता है, मूर्ख व हीन नहीं। एक दूसरे को परस्पर ज्ञानादि का आदान-प्रदान करना ही उत्तम समाज का लक्षण है। पर परस्पर मूर्ख कहना बुद्धिमानों का व्यवहार नहीं है। अतः इस प्रकार की बुद्धिहीनता के व्यवहारों को त्यागकर अप्रैल–१ के बदले में जनवरी-१ को Foolish day के रूप में मनाकर अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दें।

जनवरी–१ की आधी रात को शीत अपने चरम सीमा पर रहती है। सर्वत्र उसका ही प्रकोप दिखाई देता है। पौधे, वृक्ष, वनस्पति, लता-गुल्म आदि सभी रसहीन होकर मुरझे जाते हैं। फूलों का विकास कहीं भी नहीं दीखता। पशु-पक्षियों को तो शीत मृत्यु सदृश दिखाई देती है। ऐसे विशादकर, दुःखमय समय में नया वर्ष मनाना क्या उचित है? सुधी पाठक

विचार करें ।

दिन का प्रारम्भ आधी रात को नहीं, अपितु सूर्योदय से ३ घण्टे पूर्व (3 A.M.) होता है । उसी समय पशु-पक्षी आदि जागकर अपने-अपने मधुर ध्वनियों से सभी दिशाओं को मनोहर एवं श्रव्य बनाते हैं । वह दृश्य अवर्णनीय होता है । उसी समय ऋषि, मुनि, योगी आदि भी जागकर ध्यान- मग्न हो जाते हैं, ब्रह्म में लीन हो जाते हैं । इसलिए उस समय को ब्रह्ममुहूर्त कहते हैं । किसान भी उसी समय निद्रा को त्यागकर खेती के कार्यों में लग जाते हैं । उसी समय सम्पूर्ण संसार में सक्रियता, क्रियाशीलता दिखाई देती है । रात को मुरझे हुए पत्ते और फूलों में भी उसी समय विकास आरम्भ होता है । प्राणियों के शरीरों में भी उसी समय एक विशिष्ट चैतन्य का संचार होता है । मनुष्यों के शरीरों में भी सक्रियता, रक्त का संचार, हृदय की गति बढ़ती है । इसलिए हृदय के रोगियों को प्रायः इसी समय हृदयाघात होता है । हम सुनते आये हैं और आयुर्वेदादि शास्त्र भी कहते हैं कि सभी मनुष्यों को इसी ब्रह्ममुहूर्त में जागना चाहिए । क्योंकि इस दिव्य मुहूर्त में सोने वाले की आयु, शक्ति और बुद्धि क्षीण हो जाती है एवं आलसी पन बढ़ जाता है। इस प्रकार यह जड़ जगत्, पशु-पक्षी, मनुष्यों का अनुभव एवं शास्त्र यह प्रकट कर रहें कि ब्रह्ममुहूर्त से दिन आरम्भ होता है । पर इसके विपरीत आधी रात को दिन का आरम्भ वा संवत्सर का आरम्भ मानना क्या अज्ञानता का प्रतीक नहीं है? मेधा सम्पन्न भारतीयों को पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण कर पशु-पक्षियों से हीन अज्ञानियों के जैसा व्यवहार करना शोभा नहीं देता । अग्नि व दीपकों को प्रज्वलित कर प्रकाश से प्रसन्न होकर अलौकिक आनन्दानुभूति करने की संस्कृति है हमारी। पर दीपकों को बुझाकर अन्धकार से प्रीति करने की सभ्यता है पाश्चात्यों की। चारों ओर घनघोर अन्धकार से आच्छादित आधी रात को मनुष्य ही नहीं, अपितु पशु-पक्षी आदि भी गहरी नींद में रहते हैं । कहीं भी चेतनता, क्रियाशीलता नहीं दीखती । ऐसे समय में वर्ष व दिन का आरम्भ मानना

अज्ञान एवं अविवेकता है, विज्ञान के विरुद्ध है। एक सूर्योदय (ब्रह्ममुहूर्त) से दूसरे सूर्योदय के बीच के समय को ज्योतिष शास्त्र में सावन दिन कहते हैं। मध्यरात्रि से दिन आरम्भ होने का वर्णन किसी भी शास्त्र में नहीं है। अतः भारतमाता के हे वीर सपूतों! जागो, सचेत हो जाओ, विचार करो।

यथार्थ नूतनसंवत्सर

अभी तक यह स्पष्ट किया गया है कि– जनवरी-१ किसी भी परिस्थिति में संवत्सर का पहला दिन नहीं हो सकता। पुनः नया वर्ष कब प्रारम्भ होता है? इस प्रश्न के समाधान को जानने से पूर्व कुछ अन्य प्रश्नों पर विचार करते हैं। दिन वा सूर्योदय सदा नये-नये ही आते हैं, कभी भी पुराने नहीं आते। कल का सूर्योदय आज के सूर्योदय से भिन्न ही था और आज का सूर्योदय भविष्य में पुनः कभी नहीं आयेगा। प्रत्येक सूर्योदय भूतभविष्य से अतीत नव-नूतन ही उदित होते हैं। जब प्रतिदिन या प्रत्येक सूर्योदय नया है, तो पुनः 'नया वर्ष' का अर्थ क्या है? वर्षभर में एक ही दिन नया आता है, शेष सब पुराने आते हैं, ऐसा अर्थ तो हो नहीं सकता। संवत्सर के प्रत्येक दिन या सूर्योदय को पुराना समझने वाला व्यक्ति एक दिन या सूर्योदय को नया कैसे समझ सकता है? इस प्रकार के प्रश्न करने वाले लोगों का अभाव नहीं है। इन प्रश्न कर्ताओं से यदि यह पूछा जाय कि आपका जन्म दिन क्या है? तो वह वर्ष के किसी एक दिन को अपना जन्म दिन बताएगा। अर्थात् वह दिन उस व्यक्ति का पहला दिन है, उसी दिन वह नये वर्ष में प्रवेश करेगा। वह उसका नया वर्ष है, उसकी अवस्था (आयु) में एक नई संख्या जुड़ जायेगी। उसी प्रकार नया वर्ष का अर्थ है सृष्टि का जन्मदिन, उसी दिन से नया वर्ष आरम्भ होता है।

जब सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ था, तब चारों ओर हरे भरे एवं पुष्पित वृक्ष-वनस्पति आदि, विविध पक्षियों के मनोरञ्जक ध्वनियाँ और

प्रकाशमान सूर्यादि नक्षत्रों से देदीप्यमान आकाश इत्यादि से, आकर्षक तथा आह्लादजनक विचित्र स्थितियाँ थीं । उस समय उत्पन्न मानव किस प्रकार की आनन्दानुभूति प्राप्त किये होंगे? कल्पना करके देखें । उस प्रकार के मानव एवं सृष्टि के जन्म दिन का स्मरण करना ही नया संवत्सर है । उसी दिन से सृष्टि का नया दिन आरम्भ होता है ।

यह सृष्टि उत्पन्न होकर अभी तक (२०७१ विक्रम संवत्, मार्च-२०१४ तक) १,९७,२९,४९,११५ वर्ष बीत गये । इस परिगणना में कुछ लोगों को सन्देह होता है कि इतने सुदीर्घ कालगणना को मानवों ने कैसे याद रखा है? इसका समाधान अत्यन्त सरल है । प्रत्येक व्यक्ति जिस प्रकार अपने जन्म दिन और अवस्था (Age) को बार-बार स्मरण करते हुए, दूसरों को बताते हुए याद रखता है, उसी प्रकार सृष्टि का काल भी याद रखा गया है । वैदिक संस्कृति एवं भारतीय परम्परा में हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने कुछ अद्‌भुत पद्धतियों को इस समाज में प्रवेश कराया है । तद्यथा– कोई भी व्यक्ति गुरुओं को, विद्वानों को वा अन्य पूज्यों को अभिवादन करते समय अपने गोत्र, वंश, पिता आदि का नाम उच्चारण करते हुए अपनी विद्यापरम्परा अर्थात् अपने वेद, शाखा, सूत्रादि को ज्ञापित करता था । यह परम्परा आज भी ब्राह्मणों में प्रचलित है । इससे गोत्रादि का विस्मरण नहीं होता । जो इस परम्परा को नहीं अपनाये, वे अपने गोत्र को भूलकर पर्वत, नदी, नगर, वृक्ष आदियों के नामों को या निरर्थक शब्दों को अपने गोत्र के रूप में चला रहे हैं । सम्प्रति आधुनिक प्रभाव से ब्रह्मण भी उस परम्परा को त्यागते जा रहे हैं, अस्तु । इसी प्रकार सृष्टि का काल विस्मृत न हो, इस उद्देश्य से हमारे ऋषि-मुनियों ने प्रतिदिन किये जाने वाले संध्या, यज्ञ, पर्वयज्ञादियों को प्रारम्भ करने से पूर्व संकल्प पाठ करने की परम्परा को प्रचलित कराया । इस संकल्प में यजमान या पुरोहित सृष्टि के आरम्भ से लेकर यज्ञानुष्ठान के समय तक के सम्पूर्ण काल की गणना संस्कृतभाषा में करते हैं, साथ में ब्रह्माण्ड से लेकर यज्ञानुष्ठान के स्थल तक अर्थात्

ब्रह्माण्ड, भूलोक, द्वीप, देश, प्रदेश, पर्वत वा नदियों के प्रान्तों का नाम, नगर, ग्राम, घर, स्थान आदि का भी उल्लेख करता है। तत्पश्चात् अपने मनोगत शुभकामनाओं को अभिव्यक्त करता है। यही संकल्प है। यह परम्परा आज भी धार्मिक कृत्यों में सुरक्षित चल रही है। इस प्रकार की परम्पराएँ भारतदेश को छोड़कर अन्यत्र मिलना असम्भव है। इस प्रकार की परम्परा से आगत वा ज्ञात सृष्टिकाल को आधुनिक वैज्ञानिक भी स्वीकार कर रहे हैं।

इस नववर्ष (चैत्र शुक्ल प्रतिपदा) तक सृष्टि में सर्वत्र हमें नूतनत्व दिखाई देता है। वृक्ष, वनस्पति आदियों में पत्ते झड़कर नये-नये पत्ते, फूल, फल आदि विकसित होकर हरितमय मनोरम दृश्य दिखाई देता है। ऐसे वातावरण में मोर भी विकसित पंखों से नृत्य करने लगते हैं। वसन्त ऋतु में अर्थात् चैत्र-वैशाख मासों में मधुमक्खियां भी छत्तों में शहद को भरकर रखती हैं। इसीलिए इन मासों के नाम वैदिक काल में मधु-माधव प्रसिद्ध हुए। इस वसन्त ऋतु के आरम्भ होते ही कोयल भी अपने मधुर ध्वनियों से लोगों को आकर्षित करती हैं और नववर्ष का स्वागत करती हैं। कोयल के इस मनोरञ्जक ध्वनियों को उद्दिष्ट कर किसी कवि ने कहा कि –

काकः कृष्णः पिकः कृष्णः को भेदः पिककाकयोः।
वसन्तकाले सम्प्राप्ते काकः काकः पिकः पिकः ॥

देखने में कौवा और कोयल दोनों ही काले दीखते हैं, दोनों में कोई भेद नहीं है। पर वसंत ऋतु का आगमन होते ही अपने-अपने स्वरों से कौवा कौवे के रूप में और कोयल कोयल के रूप में पहचाने जाते हैं।

वसंत ऋतु प्रविष्ट होते ही सभी प्राणियों में भी नूतनशक्ति सञ्चित होती है। वर्षाकाल और शीतकाल के बीच में शरद् ऋतु आती है, वह एक सन्धिकाल है। इस ऋतु सन्धि में अर्थात् भाद्रपद, आश्वयुज मासों में मनुष्यों को विविध व्याधियाँ एवं रोगों का संक्रमण होता है। विशेषकर निर्बल व्यक्तियों पर अधिक दुष्प्रभाव पड़ता है। इसी ऋतुसंन्धि में अधिकांश लोग

मृत्यु के ग्रास बनते हैं। इसलिए व्याधियों का शिकार न होता हुआ जो शरद् ऋतु को बिताता है, वह अपने आपको बड़े सौभाग्यशाली मानता है और मृत्यु को जीतने जैसा प्रसन्न होता है। अत एव सभी मनुष्य वेदमन्त्रों के माध्यम से भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि – हे ईश्वर! हम शरद् ऋतु में पूर्ण स्वस्थ रहें– **"पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम् ,श्रृणुयाम शरदः शतम्".....**(यजु०३६.२४)। इस मन्त्र का भाव यह है कि हमारे सभी इन्द्रिय एवं शरीर सौ शरद् ऋतुओं तक पूर्ण स्वस्थ तथा बलशाली हों, सुखयुक्त हों और हम सौ शरद् ऋतुओं से भी अधिक जीने वाले हों। महर्षि दयानन्द ने भी लिखा है कि-"हे मनुष्यों! जो शरद् ऋतु में उपयोगी पदार्थ हैं, उनको यथायोग्य शुद्ध करके सेवन करो"(यजु०१४.१६)। "जो लोग अच्छे पथ्य करने हारे शरद् ऋतु में रोगरहित होते हैं, वे लक्ष्मी (ऐश्वर्य) को प्राप्त होते हैं" (यजु०२१.२६)।

कठोपनिषद् में भी हम देखते हैं — जब नचिकेता तीसरे वर के रूप में मृत्यु का रहस्य पूछते हैं, तब यमाचार्य अनेक प्रलोभनों को दिखाते हुए कहते हैं कि– **"स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि.... नचिकेतो! मरणं मानुप्राक्षीः"**(कठो०१.१.२३,२५)

हे नचिकेत! तुम जितने शरद् ऋतुओं तक जीना चाहते हो, उतने शरद् ऋतुओं तक जीवित रहने हेतु दीर्घ जीवन को माँगो, पर मृत्यु के रहस्य को मत पूछो। इसी प्रकार वैदिक वाङ्मय में अनेकत्र शरद् ऋतु एक भयावह के रूप में दीखता है। पर इस प्रकार का मृत्युभय या अस्वस्थता का भय वसन्त ऋतु की सन्धि में अर्थात् फाल्गुन-चैत्र मासों की सन्धिवेला में नहीं दीखता। बल्कि इसके विपरीत वसन्त के आरम्भ से सभी के शरीर में नूतन चैतन्य प्रसन्नता आदि ही दीखती हैं।

वसन्त ऋतु के आरम्भ होते ही वातावरण, आकाशादि अत्यन्त निर्मल होते हैं एवं अपरिमित आह्लादकर होते हैं। इस ऋतु में सूर्य भूमध्य रेखा पर पहुँचता है। इससे वातावरण में समान शीतोष्ण होते हैं, भूमण्डल

पर सभी मनुष्यों को सूर्य का दर्शन होता है। दिन-रात समान होते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण प्रकृति में नूतनत्व दिखाई देता है। इसी नूतनत्व का अनुकरण करते हुए प्राचीन काल में सभी मनुष्य इस दिन को संवत्सर के आदि दिन के रूप में, एक पर्व के रूप में मनाया करते थे। वह परम्परा आन्ध्रप्रदेश एवं तेलंगाणा में 'युगादि'(=युग का आदि दिन) के रूप में, जम्मु-कश्मीर में 'नवरेह' के रूप में, महाराष्ट्र में 'गुडिपड्वा' के रूप में, असम में 'रोंगली' के रूप में, केरल में 'विशुदिन' के रूप में मनाते हैं। इस प्रकार विभिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न नामों से उस पर्व को मनाते हुए आ रहें हैं। इतना ही नहीं ईरान, ईराक देशों में भी 'नौरोज' (नया दिन, संवत्सर का आद्य दिन) के रूप में वहां के लोग नयावर्ष मनाते हैं। इस प्रकार वसन्त ऋतु प्रारम्भ होने के दिन अर्थात् चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन नये वर्ष (संवत्सरादि) को मनाना सर्वमान्य ही नहीं अपितु प्रकृति, सूर्य-चन्द्रादि की स्थितियों के अनुकूल है, वैज्ञानिक है एवं युक्तियुक्त है।

वेदादि में भी वसन्त ऋतु से ही संवत्सर (कालगणना) आरम्भ होने का उपदेश है- **''मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू इषश्चोर्जश्च शारादावृतू सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू** (तैत्तिरीयसंहिता ४.४.११.१, १.४.१४, अपि च द्र०यजु०१३.२५;१४.६,१५,१६,२७; १५.५७)।'' यहां स्पष्टरूप से वसन्तादि छः ऋतुओं का वर्णन है और प्रत्येक ऋतु दो-दो मासों में विभाजित हैं। स्पष्ट है कि वर्ष वसंत ऋतु से व मधु मास से आरम्भ होता है। यहाँ यह भी स्मर्तव्य है कि सृष्टि के आदि में प्रादुर्भूत वेदों में ही बारह मास एवं छः ऋतुओं का वर्णन है। पाश्चात्यों के समान दस मासों से बारह मासों का विकास नहीं हुआ।

वैदिक काल के मधु,माधव आदि जो मासों के नाम हैं, वे कालान्तर में नक्षत्रों के नामों से प्रसिद्ध हुए हैं। इन नाक्षत्रिक नामों के विषय में महर्षि पाणिनि ने स्वविरचित अष्टाध्यायी में वर्णन किया कि–

''सास्मिन् पौर्णमासीति''(४.२.२०) अर्थात् पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा जिस नक्षत्र से युक्त होगा उसी नक्षत्र के नाम से मास का नाम होगा। तद्यथा-पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा चित्रा नक्षत्र से युक्त होने पर उस मास का नाम चैत्र होता है। विशाखा नक्षत्र से युक्त होने पर मास का नाम वैशाख होता है। वैसे ही ज्येष्ठ नक्षत्र से ज्येष्ठ मास, (उत्तर) आषाढा नक्षत्र से आषाढ मास, श्रवण नक्षत्र से श्रावण मास, (उत्तर) भाद्रपद नक्षत्र से भाद्रपद मास, अश्विनी नक्षत्र से आश्विन (आश्वयुज) मास, कृत्तिका नक्षत्र से कार्त्तिक मास, मृगशिरा नक्षत्र से मार्गशीर्ष मास, पुष्य नक्षत्र से पौष मास, मघा नक्षत्र से माघ मास, फाल्गुन नक्षत्र से फाल्गुन मास का नामकरण होता है। इस प्रकार मासों के नामों से ही आकाशस्थ ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति का बोध होता है। यह हमारे पूर्वजों के खगोलशास्त्रीय ज्ञान का परिचायक है।

मासों के वैदिक नाम और इस समय प्रचलित नाक्षत्रिक नामों को ऋतुओं के साथ इस प्रकार जानें–

वैदिक नाम	**नाक्षत्रिक नाम**	**ऋतु**	**अयन**
मधु,माधव	चैत्र,वैशाख	वसन्त	उत्तरायण
शुक्र,शुचि	ज्येष्ठ,आषाढ	ग्रीष्म	उत्तरायण
नभस्,नभस्य	श्रावण,भाद्रपद	वर्षा	दक्षिणायन
इष,ऊर्ज	आश्विन,कार्तिक	शरद्	दक्षिणायन
सहस्,सहस्य	मार्गशीर्ष,पौष	हेमन्त	दक्षिणायण
तपस्,तपस्य	माघ, फाल्गुन	शिशिर	उत्तरायण

इस प्रकार संवत्सर को मास एवं ऋतुओं में विभक्त किया जाता है- **''द्वे रूपे संवत्सरस्य मासा अन्यद् ऋतवो''**(काठक सं०३४.७)। ऋतुओं का क्रम वसन्त से ही आरम्भ होता है ऐसा स्पष्ट वर्णन वैदिक वाङ्मय में अनेकत्र उपलब्ध होता है। यथा- **''मुखं वा एतदृतूनां यद् वसन्तः''** (तैत्तिरीय ब्राह्मण-१.१.२.६,७) ऋतुओं में वसन्त मुख सदृश है, प्रथम स्थानीय

है[1]। अतः वसन्त ऋतु के आरम्भ से अर्थात् चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन ही नया वर्ष मानना वेदादि शास्त्रों और भारतीय परम्परा से अनुमोदित है । हम सब अंग्रेजी कैलेण्डर के दास वा अभ्यस्त होने पर भी विवाह, जन्मदिन, अक्षराभ्यास, गृहप्रवेश, व्यापारादि शुभ कार्यों को आरम्भ करते समय भारतीय पंचांग का ही आश्रय लेते हैं, अंग्रेजी कैलेण्डर का नहीं । यही है भारतीय संस्कृति का अमरत्व ।

सूर्य और भूमि के बीच में जब चन्द्रमा आ जाता है, तब ये तीनों एक ही रेखा पर रहते हैं । इसी स्थिति को अमावास्या कहते हैं । चन्द्रमा की गति अधिक होने के कारण वह सूर्य की अपेक्षा से आगे चला जाता है । इस प्रकार सूर्य-चन्द्रमाओं के बीच में १२° अंशो (डिग्रियों) की दूरी का अन्तर पड़ जाता है । वही अन्तर एक तिथि (दिन) कहलाता है । इस प्रकार उनकी बीच की दूरी १२°,२४°,३६°,.....अंश बढ़ते-बढ़ते पुनः एक रेखा पर आने के लिए अर्थात् उनका एक वृत्त पूरा होने के लिए (३६०°÷१२°=) ३०तिथियाँ (दिन) बनतीं हैं, अर्थात् एक मास पूरा हो जाता है[2]। इस प्रकार एक अमावास्या से दूसरी अमावास्या तक एक मास (३०दिन) पूरा हो जाता है[3] । वेदमन्त्र के माध्यम से यह वर्णन किया जा चुका है कि एक वर्ष में बारह मास होते हैं । अर्थात् एक वर्ष में (१२मास×३०दिन) ३६० दिन होते हैं । इसका भी वर्णन वेदमन्त्रों में है । यथा- **“ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः...”**(अथर्व०१.१.१) । यहाँ ‘त्रिषप्ताः’ शब्द का अर्थ इस प्रकार है–

---

१. अन्यत्र द्रष्टव्य स्थल- ताण्ड्यमहा ब्रा० ५,९.११, कौषीतकी ब्रा०५.१, शांखायन ब्रा० १९.३ आदि

२. यह वर्णन मास के अमान्त पक्ष का है, उसी प्रकार पूर्णिमान्त पक्ष को भी समझा जा सकता है।

३. षष्टिर्मासस्याहोरात्राणि (शतपथ०६.२.२.३५) एक मास में साठ दिन-रात होते हैं अर्थात् तीस दिन होते हैं।

१. तीन से सात तक की विषमसंख्याओं का योग- ३+५+७=१५
२. तीन बार सात ३×७=२१(+)
३६
३. तीन और सात का योग ३+७=१०(×)
३६×१०=३६०

इस प्रकार सृष्ट्यादि में ही वेद ने बताया कि एक वर्ष में ३६० दिन होते हैं । और एक मन्त्र को देखें–

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शंकवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः।।

(ऋ०१.१६४.४८)

संवत्सर रूपी कालचक्र में बारह मास रूपी परिधियाँ, तीन प्रमुख (ग्रीष्म,वर्षा,शरद्) ऋतुरूपी नाभियाँ और ३६० दिन रूपी आरें होते हैं, जो कि अत्यन्त चलायमान हैं ।

इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों में भी संवत्सर में ३६० दिन होने का स्पष्ट वर्णन है– **त्रीणि च ह वै शतानि षष्टिश्च संवत्सरस्याहोरात्राणि** (गोपथ ब्रा०१.१.५.५) ।

शास्त्रों में काल की परिगणना मानवीय एवं ब्राह्म वर्षों में की जाती है । ब्राह्मवर्ष के विषय में यहाँ संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं । इस सृष्टि की स्थिति एवं प्रलय के काल को मिलाकर एक ब्राह्मदिवस कहते हैं । इसका परिमाण मानवीय गणना में ४,३२,००,००,००० वर्ष रहता है। ऐसे तीस दिनों का एक ब्राह्ममास होता है । बारह ब्राह्ममासों का एक ब्राह्मवर्ष होता है । ऐसे सौ ब्राह्मवर्षों को मिलाकर उसे परान्त काल कहते हैं । एक ब्राह्मवर्ष में (१२×३०=३६०) तीन सौ साठ ब्राह्मदिन रहते हैं । परान्तकाल में (३६०×१००=३६,०००) छत्तीस हजार ब्राह्मदिन रहते हैं । इसे ही महर्षि दयानन्द ने मोक्षकाल माना है । मुक्तात्मा परान्तकाल तक

अर्थात् छत्तीस हजार बार इस सृष्टि की उत्पत्ति एवं प्रलय होने तक परमात्मा के आनन्द का अनुभव कर पुनः जन्म लेता है, अस्तु । यहाँ विशेषतः ध्यातव्य है कि ब्राह्मवर्ष में भी ३६० ही दिन होते हैं, ऐसा हमारे शास्त्र एवं ऋषि-मुनियों ने स्वीकारा है ।

भारतीय गणितपद्धति में कालगणना दो प्रकार से की जाती है– १. सौरमान, २.चान्द्रमान । चन्द्रमा का भूमि के चारों ओर परिक्रमा करने के लिए २९.५ दिन लगते हैं । यह चान्द्रमान कहलाता है । बारह चान्द्रमासों का एक चान्द्रवर्ष होता है, जिसमें २९.५×१२=३५४ दिन होते हैं । पर सौरमान के अनुसार भूमि को सूर्य के चारों ओर परिक्रमण करने के लिए ३६५.२५ दिन अपेक्षित हैं । इस प्रकार चान्द्रवर्ष एवं सौरवर्ष में ११.२५ दिनों का अन्तर होता है । इस अन्तर को प्रत्येक ३२ मासों के बाद चान्द्रवर्ष को १३ मासों का मानकर किया जाता है । इसी तेरहवें मास को अधिकमास, अधिमास, मलमास आदि कहते हैं । इस प्रकार वर्ष में १२ मास या कभी-कभी १३ मास होते हैं । इसका भी स्पष्ट उल्लेख हमारे ऋषि-मुनियों ने किया– **''द्वादश वा वै त्रयोदश वा संवत्सरस्य मासाः''** (शतपथ० २.२.३.२७) । चन्द्रमा से मास बनने के कारण उसे **''मासकृत्''** (ऋ०१.१०५.१८) कहते हैं ।

इसप्रकार भारतीय कालगणना सूर्य चन्द्रादियों पर आश्रित है । हमारा कालान्तर (कैलेण्डर) खगोलविज्ञान से सम्बन्धित है । प्राकृतिक घटनाओं से सम्बन्ध रखने वाला परिज्ञान कभी भी असत्य नहीं हो सकता। जैसे कि– सूर्यग्रहण सदा अमावास्या के दिन ही होता है, चन्द्रग्रहण पूर्णिमा के दिन ही होता है । इस प्रकार देखें तो आधुनिक विज्ञान के विना प्राकृतिक विज्ञान को जानने वाला व्यक्ति कालान्तर (कैलेण्डर) के विना ही चन्द्रमा को देखकर मास, शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष, पूर्णिमा,अमावास्या,अष्टमी आदि तिथियों को जानलेता है । पर आधुनिक विज्ञान को जानने वाला कैलेण्डर के विना कुछ भी नहीं जान सकता ।

अभी तक हमने प्रमाण एवं युक्तियों से जान लिया कि चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन नये वर्ष को मनाना ही युक्तियुक्त है । अब इस वर्ष की विशेषताओं का वर्णन किया जाता है–

१. **चैत्रे मासि जगद् ब्रह्म ससर्ज प्रथमेऽहनि ।**
शुक्लपक्षे समग्रे तु सदा सूर्योदये सति ॥ (हेमाद्रि)

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के प्रथम सूर्योदय तक परमेश्वर ने सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण कर मानवों को उत्पन्न किया था । अत एव इसे सृष्टिसंवत्सर और मानव संवत्सर कहते हैं ।

२. इसी दिन मनावों के कल्याण निमित्त परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा नाम के चार ऋषियों के अन्तःकरण में वेदज्ञान प्रकाशित किया । इसलिए इसे वेदसंवत्सर भी कहते हैं ।

३. इसीदिन कलियुग संवत्सर आरम्भ होता है ।

४. इसी दिन पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हुआ था । इसीलिए युधिष्ठिर संवत्सर भी इसी दिन आरम्भ होता है ।

५. अत्यन्त पराक्रमी, धर्मात्मा और न्यायप्रिय विक्रमादित्य के नाम से प्रसिद्ध संवत्सर भी इसी दिन आरम्भ होता है ।

६. शालिवाहन ने हुणों को पराजित कर दक्षिण भारत में एक अच्छा धार्मिक राज्य स्थापित किया था । तब से शालिवाहन शक संवत् भी आरम्भ हुआ था । यह संवत्सर भी इसी दिन आरम्भ होता है ।

७. महर्षि दयानन्द ने वैदिक धर्म एवं प्राचीन संस्कृति की रक्षा के लिए और मानव समाज की उन्नति के लिए इसी दिन आर्यसमाज की स्थापना की थी ।

८. इस नये वर्ष के समीप में ही अर्थात् चैत्र शुक्ल नवमी के दिन मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम का राज्याभिषेक हुआ था ।

नये वर्ष के दिव्य सन्देश

इस नये वर्ष के दिव्य सन्देशों को ग्रहण कर उनसे प्रेरित होकर हम इस पर्व को महदानन्द से मनाने के लिए इस प्रकार प्रयास करें–

१. यह सृष्टि का उत्पत्ति का दिन है । उत्पत्ति के समय यह जिस प्रकार अत्यन्त निर्मल, शुद्ध-पवित्र, सभी प्राणियों के लिए स्वास्थ्यदायक एवं मनोहर था, उसी प्रकार बनाये रखने के लिए, सुरक्षित रखने के लिए हम सब कटि बद्ध हों। वातावरण के प्रदूषण को समाप्त करने हेतु वृक्षादियों की रक्षा करते हुए उनकी वृद्धि करें तथा प्रतिदिन यज्ञ-यागों का अनुष्ठान करें ।

२. यह मानव संवत्सर है । सभी मनुष्य एक भगवान् की संतानें हैं । इसलिए हम सब जाति, मत, देश लिंगादि भेदों को भुलाकर एवं ईर्ष्या, द्वेष, असूयादि दोषों को त्यागकर परस्पर अत्यन्त प्रीति, प्रेम, अनुरागादियों से मिलजुलकर रहें और अपनी मानवता को प्रदर्शित करें । **''वसुधैव कुटुम्बकम्''** सम्पूर्ण जगत् ही एक परिवार है इस पवित्र भावना से वर्तें।

३. यह वेदोत्पत्ति का संवत्सर है । वैदिक धर्म तथा वैदिक संस्कृति भूमण्डल पर जब तक परिव्याप्त थी, तब तक सभी मनुष्य सर्वविध सुख-शान्तियों से पूर्ण सन्तृप्त थे । अतः हम आज भी विभिन्न समयों में स्वार्थवश स्थापित व प्रचलित साम्प्रदायिक सिद्धान्तों एवं विभेदों को त्यागकर भगवत्प्रदत्त दिव्य वेदज्ञान को प्राप्तकर, उसका अनुसरण कर ऋषि-मुनियों के समान और श्रीराम, श्रीकृष्ण जैसे महापुरुषों के समान सुख-शान्तियों को प्राप्त कर सकते हैं । जिससे एक दिव्यमानवसमाज का निर्माण होगा ।

४. यह श्रीराम, युधिष्ठिर, विक्रमादित्य, शालिवाहन जैसे धर्मपारायण महाराजों के धर्मराज्य की स्थापनादिवस है । अतः हम सब अधर्म, अन्याय, अत्याचार, अनाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार, अविनीति जैसी

नीच भावनाओं से सन्तप्त राजनीति को भस्मकर, धर्मराज्य की स्थापना के लिए आगे बढ़ें एवं दृढ़ संकल्प लें । **"धर्मो रक्षति रक्षितः"**(गीता) यदि हम धर्म की रक्षा करते हैं, तो धर्म हमारी रक्षा करता है ।**"यतो धर्मस्ततो जयः"**(गीता) जहाँ धर्म है, वहीं विजय और सुख-शान्तियाँ होती हैं ।

५. यह आर्यसमाज का स्थापना दिवस है । आर्य का अर्थ है श्रेष्ठ, समाज का अर्थ मानवता युक्त मनुष्यों का समुदाय । आर्यसमाज का अर्थ है कि उत्तमोत्तम, श्रेष्ठ मनुष्यों का समाज । **"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"** (ऋ०९.६३.५) इस विश्व में व्याप्त अज्ञान-अन्धकार एवं दुष्टशक्तियों का विनाश कर पूरे विश्व को आर्य बनावें, एक दिव्य मनुष्यों के समाज का निर्माण करें। स्वार्थ, अज्ञान, भूत-प्रेत, यन्त्र-तन्त्र, अन्धविश्वास आदियों को समूल नष्ट कर सभी मनुष्यों को ज्ञानी व विवेकी बनावें ।

संवत्सरों के नाम

''प्रभवो विभवः शुक्लः प्रमोदोऽथ प्रजापतिः ।
अंगिराः श्रीमुखो भावो युवा धातेश्वरस्तथा ।।
बहुधान्यः प्रमाथी च विक्रमोऽथ वृषस्तथा ।
चित्रभानुः सुभानुश्च तारणः पार्थिवो व्ययः ।।
सर्वजित्सर्वधारी च विरोधी विकृतिः खरः ।
नन्दनो विजयश्चैव जयो मन्मथ-दुर्मुखौ ।।
हेमलम्बी विलम्बी च विकारी शार्वरीप्लवः ।
शुभकृच्छोभनः क्रोधी विश्वावसुपराभवौ ।।
प्लवंगः कीलकः सौम्यः साधारणविरोधकृत् ।
परिधावी प्रमाथी च आनन्दो राक्षसोऽनलः ।।
पिङ्गलः कालयुक्तश्च सिद्धार्थो रौद्र-दुर्मती ।
दुन्दुभी रुधिरोद्गारी रक्ताक्षी क्रोधनः क्षयः।।''

१. प्रभव	२१. सर्वजित्	४१. प्लवंग
२. विभव	२२. सर्वधारी	४२. कीलक
३. शुक्ल	२३. विरोधी	४३. सौम्य
४. प्रमोद	२४. विकृति	४४. साधारण
५. प्रजापति	२५. खर	४५. विरोधकृत्
६. अंगिरा	२६. नन्दन	४६. परिधावी
७. श्रीमुख	२७. विजय	४७. प्रमाथी
८. भाव	२८. जय	४८. आनन्द
९. युवा	२९. मन्मथ	४९. राक्षस
१०. धाता	३०. दुर्मुख	५०. अनल (नल)
११. ईश्वर	३१. हेमलम्बी	५१. पिंगल
१२. बहुधान्य	३२. विलम्बी	५२. कालयुक्त
१३. प्रमाथी	३३. विकारी	५३. सिद्धार्थ
१४. विक्रम	३४. शार्वरी	५४. रौद्र
१५. वृष	३५. प्लव	५५. दुर्मति
१६. चित्रभानु	३६. शुभकृत्	५६. दुंदुभि
१७. सुभानु	३७. शोभन	५७. रुधिरोद्गारी
१८. तारण	३८. क्रोधी	५८. रक्ताक्षी
१९. पार्थिव	३९. विश्वावसु	५९. क्रोधन
२०. व्यय	४०. पराभव	६०. क्षय

प्रसिद्ध संवत्सर

१. भारतीय संवत्सर

१. सृष्टि-संवत्	....	१,९७,२९,४९,११५
२. श्रीराम-संवत्	....	१,२५,६९,११५
३. श्रीकृष्ण-संवत्	....	५,२४०
४. युधिष्ठिर/कलियुग संवत्	....	५,११५
५. बौद्ध संवत्	....	२,५८९
६. महावीर (जैन) संवत्	....	२,५४१
७. श्रीशंकराचार्य संवत्	....	२,२९४
८. विक्रम संवत्	....	२,०७१
९. शालिवाहन(शक)संवत्	....	१,९३६
१०. कलचुरी संवत्	....	१,७६६
११. वलभी संवत्	....	१,६९४
१२. फसली संवत्	....	१,४२५
१३. बँगला संवत्	....	१,४२१
१४. हर्षाब्द	....	१,४०७
१५. दयानन्दाब्द	....	१९१

२. विदेशीय संवत्सर

१. चीनी संवत्	....	९,६०,०२,३१२
२. खताई संवत्	....	८,८८,३८,३८५
३. पारसी संवत्	....	१,८९,९८२
४. मिस्त्री संवत्	....	२७,६६८
५. तुर्की संवत्	....	७,६२१
६. आदम संवत्	....	७,३६६
७. ईरानी संवत्	....	६,०१९

८. यहूदी संवत्	....	५,७७५
९. इब्राहीम संवत्	....	४,४५४
१०. मूसा संवत्	....	३,७१८
११. यूनानी संवत्	....	३,५८७
१२. रोमन संवत्	....	२,७६५
१३. ब्रह्मा संवत्	....	२,५५५
१४. मलयकेतु संवत्	....	२,३२६
१५. पार्थियन संवत्	....	२,२६१
१६. ईस्वी (ईसा) संवत्	....	२,०१४
१७. जावा संवत्	....	१,९४०
१८. हिजरी संवत्	....	१,३८४

राशि और ऋतुओं का काल

राशि	ऋतु	अंग्रेजी मास	अंग्रेजी ऋतु
मीन-मेष वृषभ-मिथुन	वसन्त ग्रीष्म	फरवरी-मार्च अप्रैल-मई	ग्रीष्म
कर्क-सिंह कन्या-तुला	वर्षा शरद्	जून-जुलाई अगस्त-सितम्बर	वर्षा
वृश्चिक-धनु मकर-कुम्भ	हेमन्त शिशिर	अक्टूबर-नवम्बर दिसम्बर-जनवरी	शीत

राशि और नक्षत्र

राशि	नक्षत्र सं०	नक्षत्र	राशि	नक्षत्र सं०	नक्षत्र
मेष	१	अश्विनी (१)	तुला		चित्रा (१/२)
	२	भरणी (१)		१५	स्वाति (१)
	३	कृत्तिका (१/४)		१६	विशाखा(३/४)
वृष		कृत्तिका (३/४)	वृश्चिक		विशाखा(१/४)
	४	रोहिणी (१)		१७	अनुराधा (१)
	५	मृगशीर्ष (१/२)		१८	ज्येष्ठा (१)
मिथुन		मृगशीर्ष (१/२)	धनु	१९	मूल (१)
	६	आर्द्रा (१)		२०	पूर्वाषाढ़ा (१)
	७	पुनर्वसु (३/४)		२१	उत्तराषाढ़ा(१/४)
कर्क		पुनर्वसु (१/४)	मकर		उत्तराषाढ़ा(३/४)
	८	पुष्य (१)		२२	श्रवण (१)
	९	आश्लेषा (१)		२३	धनिष्ठा (१/२)
सिंह	१०	मघा (१)	कुम्भ		धनिष्ठा (१/२)
	११	पूर्वा फाल्गुनी(१)		२४	शतभिषा (१)
	१२	उत्तरा फाल्गुनी(१/४)		२५	पूर्वाभाद्रपदा(३/४)
कन्या		उत्तरा फाल्गुनी(३/४)	मीन		पूर्वाभाद्रपदा(१/४)
	१३	हस्त (१)		२६	उत्तराभाद्रपदा(१)
	१४	चित्रा (१/२)		२७	रेवती (१)

३६०° अंशों के आकाशीय गोल में १२ राशियाँ होती हैं। प्रत्येक राशि ३०°-३०° की होती है और प्रत्येक राशि में २¼ नक्षत्र रहते हैं।

सूचना– ऋतु और अयनों के साथ मासों के वैदिक एवं नाक्षत्रिक नाम का विवरण पृष्ठ ५९ में दिया गया है।

संख्यावाचक शब्द

शून्यों की संख्या	संस्कृत	हिन्दी	अंग्रेजी
१	एकः	एक	One
१०	दश	दस	Ten
$१०^{२}$	शतम्	सौ	Hundred
$१०^{३}$	सहस्रम्	हजार	Thousend
$१०^{४}$	अयुतम्	दस हजार	Ten Thousend
$१०^{५}$	लक्षम्	लाख	Hundred Thousend
$१०^{६}$	प्रयुतम्/नियुतम्	दस लाख	Million
$१०^{७}$	कोटिः	करोड़	Ten Million
$१०^{८}$	अर्बुदम्	दस करोड़	Hundred Million
$१०^{९}$	वृन्दः/अब्जम्	अरब	Billion
$१०^{१०}$	खर्वः	दस अरब	Ten Billion
$१०^{११}$	निखर्वः	खरब	Hundred Billion
$१०^{१२}$	महापद्मम्	दस खरब	Trillion
$१०^{१३}$	शंकुः	नील	Ten Trillion
$१०^{१४}$	जलधिः/समुद्रः	दस नील	Hundred Trillion
$१०^{१५}$	अन्त्यम्	पद्म	Quadrillion
$१०^{१६}$	मध्यम्	दस पद्म	Ten Quadrillion
$१०^{१७}$	परार्धम्	शंख	Hundred Quadrillion
$१०^{१८}$	धुनम्/शंखम्	दस शंख	Quintrillion

शून्यों की संख्या	संस्कृत	हिन्दी	अंग्रेजी
$१०^{१९}$	महाधुनम्/दशशंखम्	महाशंख	Ten Quintrillion
$१०^{२०}$	क्षित:/महाशंखम्	क्षित	Hundred Quintrillion
$१०^{२१}$	महाक्षिति:	दस क्षित	Sextillion
$१०^{२२}$	क्षोभ:	क्षोभ	Ten Sextillion
$१०^{२३}$	महाक्षोभ:	दस क्षोभ	Hundred Sextillion
$१०^{२४}$	निधि:	निधि	Septillion
$१०^{२५}$	महानिधि:	दस निधि	Ten Septillion
$१०^{२६}$	पर्वत:	पर्वत	Hundred Septillion
$१०^{२७}$	महापर्वत:	दस पर्वत	Octillion
$१०^{२८}$	अनंतम्	अनंत	Ten Octillion
$१०^{२९}$	सागरम्	सागर	Hundred Octillion
$१०^{३०}$	अव्ययम्	अव्यय	Nonillion
$१०^{३१}$	अमृतम्	अमृत	Ten Nonillion
$१०^{३२}$	अचिन्त्यम्	अचिन्त्य	Hundred Nonillon
$१०^{३३}$	अमेयम्	अमेय	Decillion
$१०^{३४}$	भूरि	भूरि	Ten Decillon
$१०^{३५}$	महाभूरि	दस भूरि	Hundred Decillon; Etc
$१०^{६२}$	महोघम्	महोघ	
$१०^{१४०}$	असंख्येयम्	असंख्येय	

संकल्प और सृष्टि की कालगणना

देशकाल की परिस्थितियों सहित अपने मनोगत पवित्र भावनाओं को व्यक्त करना ही संकल्प कहलाता है। यह दैनिक अग्निहोत्रादियों से पूर्व प्रतिदिन पढ़ा जाता है। उसका अर्थ यहां लिखा जा रहा है—

ब्राह्मदिन व ब्राह्ममास

शुक्लपक्ष	कृष्णपक्ष
१. श्वेत(वराह)कल्प	१६. नरसिंह
२. नीललोहित	१७. समान
३. वामदेव	१८. आग्नेय
४. रथन्तर	१९. सोमकल्प
५. रौरव	२०. मानव
६. प्राण	२१. पुमान्
७. बृहत्कल्प	२२. वैकुण्ठ
८. कन्दर्प	२३. लक्ष्मीकल्प
९. सत्य	२४. सावित्रीकल्प
१०. ईशान	२५. घोर
११. ध्यान	२६. वाराह
१२. सारस्वत	२७. वैराज
१३. उदान	२८. गौरीकल्प
१४. गरुड़	२९. माहेश्वर
१५. कौर्म (ब्राह्म पूर्णिमा)	३०. पितृकल्प (ब्राह्म अमावास्या)

इस समय ''श्वेतवराहकल्प'' नामक ब्राह्मदिन चल रहा है।

ब्राह्म (सृष्टि) कालगणना (मानवीय संवत्सरों में)–

ब्राह्मदिन (सृष्टिकाल) – ४,३२,००,००,००० वर्ष (१,००० चतुर्युग)
ब्राह्मरात्रि (प्रलयकाल)– ४,३२,००,००,००० वर्ष (१,००० चतुर्यग)
ब्राह्म अहोरात्र (सम्पूर्णदिन) ८,६४,००,००,००० वर्ष
ब्राह्ममास (ब्राह्म अहोरात्र×३०)– २,५९,२०,००,००,०००
ब्राह्म संवत्सर (ब्राह्ममास×१२
या ब्राह्म अहोरात्र×३६०} ३१,१०,४०,००,००,०००
ब्राह्म शत संवत्सर – ३१,१०,४०,००,००,००,०००
[ब्राह्मसंवत्सर× १००/ब्राह्म अहोरात्र×३६,०००]

इस सृष्टि के छत्तीस हजार (३६,०००) वार उत्पन्न होकर नष्ट होने के काल को परान्त काल कहते हैं। मुक्तात्मा परान्तकाल अर्थात् ३१,१०,४०,००,००,००,००० (३१ नील, १० खरब, ४० अरब) वर्षों तक परब्रह्म के आनन्द का अनुभव करता है। उसके बाद वह मुक्तात्मा पुनः जन्म लेता है।

ब्राह्म अहोरात्र में आठ प्रहर होते हैं। उनमें से चार प्रहर दिन में और चार प्रहर रात्रि में रहते हैं।

ब्राह्मदिन (सृष्टिकाल)	=४,३२,००,००,००० वर्ष
एक प्रहर का काल=दिन÷ ४	=१,०८,००,००,००० वर्ष
पूर्वाह्ण के दो प्रहरों का काल	=२,१६,००,००,००० वर्ष
अपराह्ण के दो प्रहरों का काल	=२,१६,००,००,००० वर्ष
वर्तमान सृष्टिसंवत्सर (सन्धिसहित)	=१,९७,२९,४९,११६ वर्ष
वर्तमान सृष्टिसंवत्सर (सन्धिरहित)	=१,९६,०८,५३,११६ वर्ष
इन दोनों का भेद (७ सन्धियों का काल)	= १,२०,९६,००० वर्ष

ब्राह्मदिन के प्रथम प्रहर का काल	=१,०८,००,००,००० वर्ष
ब्राह्मदिन के द्वितीय प्रहर का अर्धभाग	= ५४,००,००,००० वर्ष
ब्राह्मदिन के डेढ़ प्रहर का काल	=१,६२,००,००,००० वर्ष

यहाँ विशेषतः ध्यातव्य है कि– वर्तमान सृष्टिसंवत्सर चाहे वह सन्धि सहित हो या सन्धि रहित दोनों ही ब्राह्मदिन के आद्य दो प्रहरों के काल से कम और डेढ़ प्रहर के काल से अधिक हैं। स्पष्ट है कि सृष्टि उत्पन्न होकर अभी तक ब्राह्मदिन के आद्य डेढ़ प्रहर पूरा व्यतीत होकर दूसरे प्रहर का उत्तरार्ध चल रहा है।

आजकल संकल्प का पाठ इस प्रकार प्रचलित है–

''ओ३म् तत्सद् अद्य ब्रह्मणो द्वितीयप्रहरार्धे श्वेतवराह-कल्पे सप्तमे वैवस्वते मन्वन्तरे...'' अथवा **''ओ३म् तत्सत् श्री ब्रह्मणो द्वितीये प्रहरार्धे वैवस्वते मन्वन्तरे...''**

इस प्रकार के पाठों में कुछ विचारणीय एवं संशोधनीय विषय हैं, उन्हें यहाँ प्रस्तुत करते हैं–

१. प्रथम पाठ में 'अद्य' (=आज) शब्द का पाठ अप्रासंगिक एवं अनर्थक है। संस्कार विधि में महर्षि दयानन्द ने सृष्टिकाल का निर्देश न कर अत्यन्त संक्षिप्त संकल्प का निर्देश किया है। वह इस प्रकार है- **''अहमद्य उक्तकर्मकरणाय भवन्तं वृणे''**। महर्षि ने यहाँ सृष्टिकाल के स्थान पर उसका सांकेतिक व उपलक्षक 'अद्य'(=आज) पद का प्रयोग किया है। अतः वह सार्थक है। पर 'अद्य' का उच्चारण करने के पश्चात् पुनः सृष्टिकाल का वर्णन करना अप्रासंगिक होता है। हाँ पहिले सृष्टिकाल का वर्णन कर बाद में 'अद्य अमुक वासरे, अमुक तिथौ' आदि का पाठ कर सकते हैं, पर पूर्व में कदापि नहीं।

२. **''ब्रह्मणो द्वितीयप्रहरार्धे''** का अर्थ यह है कि 'ब्रह्म सम्बन्धी दूसरे प्रहरार्ध में'। यह दूसरा प्रहर दिन का है या रात्रि का यह यहाँ

स्पष्ट नहीं होता । अतः इस पाठ में दिन वाचक शब्द का पाठ होना चाहिए। पहिले यह कहा जा चुका है कि इस समय ब्राह्ममास का प्रथमदिवस 'श्वेतवराहकल्प' चल रहा है । अतः स्पष्टीकरण हेतु संकल्प का पाठ ऐसा होना चाहिए– **''ब्रह्मणः श्वेतवराहकल्पनामके प्रथमदिवसे तद्दिने''**। यद्यपि ब्राह्मरात्रि (प्रलयकाल) में संकल्प का पाठ असम्भव है, पुनरपि काल विभाजन का स्पष्टीकरण अपेक्षित है ।

३. **''द्वितीयप्रहरार्धे''** इस पाठ में 'अर्ध' शब्द का अर्थ 'मध्यकाल' ग्रहण करेंगे तो वह काल अर्थात् दूसरे प्रहर का अर्धभाग (१,६२,००,००,००० वर्ष) तो बहुत पहले ही बीत चुका है । बीते हुए काल को वर्तमान के रूप में वर्णन करना अज्ञानता का प्रतीक है । यदि 'अर्ध' शब्द का अर्थ मध्यभाग न लेकर भागमात्र लेंगे तो एक नया संदेह उत्पन्न होता है कि वह भाग दूसरे प्रहर का पूर्वार्ध है? या उत्तरार्ध? अतः निस्सन्देहता के लिए **''द्वितीयप्रहरोत्तरार्धे''** अथवा **''द्वितीयप्रहरे तदुत्तरार्धे''** इस प्रकार का पाठ करना चाहिए ।

४. **''द्वितीयप्रहरार्धे श्वेतवराहकल्पे''** इस पाठ में और एक दोष यह है कि इस वाक्य का 'दूसरे प्रहरार्ध में श्वेतवराहकल्प में' ऐसा अर्थ निकलता है । दिन में प्रहर होते हैं, न कि प्रहर में दिन । अतः **'श्वेतवराहकल्पे द्वितीयप्रहरोत्तरार्धे'** का पाठ करना ही निर्दुष्ट है ।

अब संकल्प के प्रथमखण्ड का शुद्धपाठ इस प्रकार जानें–

''ओ३म् तत्सत् श्रीब्रह्मणः श्वेतवराहकल्पनामके प्रथमदिवसे तद्दिने द्वितीयप्रहरे तदुत्तरार्धे'' । इस का अर्थ है– उस सत्स्वरूप परब्रह्म सम्बन्धी श्वेतवराहकल्प नामक प्रथम दिवस के दिन सम्बन्धी द्वितीयप्रहर के उत्तरार्ध में' । अब इसके आगे के पाठ **''सप्तमे वैवस्वते मन्वन्तरे''** के विवरण को दिखाते हैं–

युग और मन्वन्तरों का विभाग

चार युग होते हैं। उनके नाम और कालपरिमाण निम्न प्रकार है-

कृतयुग(सत्‌युग)	–१७,२८,००० वर्ष= कलियुग×४
त्रेतायुग	–१२,९६,००० वर्ष= कलियुग×३
द्वापरयुग	– ८,६४,००० वर्ष= कलियुग×२
कलियुग	– ४,३२,००० वर्ष= कलियुग×१
एक चतुर्यग	–४३,२०,००० वर्ष= कलियुग×१०

ब्राह्मदिन(सृष्टिकाल)--४,३२,००,००,०००वर्ष= कलियुग×१०,०००
= चतुर्यग× १,०००

७१ चतुर्युगों को मिलाकर एक मन्वन्तर कहा जाता है। तो एक मन्वन्तर का काल= ७१×४३,२०,०००=३०,६७,२०,००० वर्ष का होता हो। पूरे १४ मन्वन्तर होते हैं। उनमें आरम्भ के सात मन्वन्तर ब्राह्मदिन के पूर्वाह्ण में होते हैं, तो शेष सात मन्वन्तर अपराह्ण में होते हैं। उनके नाम नीचे दिये जाते हैं– **ब्राह्मदिन के पूर्वाह्णस्थ मन्वन्तर–** १.स्वायम्भुव, २.स्वारोचिष, ३.औत्तम, ४.तामस, ५.रैवत, ६.चाक्षुष, ७.वैवस्वत

ब्राह्मदिन के अपराह्णस्थ मन्वन्तर– ८.सावर्णि/सूर्य सावर्णि, ९.दक्ष सावर्णि, १०.ब्रह्म/बृहत्सावर्णि, ११.धर्म सावर्णि, १२.रुद्र सावर्णि/रुद्रपुत्र, १३.देवसावर्णि/रौच्य, १४.इन्द्रसावर्णि/भौत्य/भौतव्यक[१]।

सन्धि या सन्ध्या का काल

प्रत्येक दो मन्वन्तरों के बीच में एक सन्धिकाल या सन्ध्याकाल होता है। उसका परिमाण एक सत्‌युग के समान अर्थात् १७,२८,००० वर्ष

१. द्रष्टव्य- ब्रह्माण्ड पुराण– २.३६.२-४,४.१.१-११६; मत्स्यपुराण ९.१-३९; विष्णुपुराण ३.१.३-३.२.४५; हरिवंशपुराण १.७.१-७,१.७.६०-९०; स्कन्दपुराण प्रभासखण्ड- १.१०५.३९,४० ।

का होता है । स्वायम्भुव (प्रथम) मन्वन्तर से पहिले भी एक सन्धिकाल होता है । इस प्रकार पूरे १५ सन्धिकाल होते हैं । ब्राह्मदिन के पूर्वाह्न में अर्थात् आरम्भिक सात मन्वन्तरों में साढ़े सात सन्धियाँ होती हैं । सातवें एवं आठवें मन्वन्तरों के बीच का जो सन्धिकाल है, वही ब्राह्मदिन का मध्याह्न है । इन सन्धिकालों में जलप्लवनादि आंशिक प्रलय होते हैं। इस प्रकार १४ मन्वन्तरों और १५ सन्धिकालों को मिलाकर एक ब्राह्मदिन (४,३२,००,००,००० वर्ष या १००० चतुर्युग) पूरा होता है । इसे निम्नप्रकार जानें–

१४ मन्वन्तरों का काल–१४×३०,६७,२०,०००=	४,२९,४०,८०,०००वर्ष
१५ सन्धियों का काल–१५× १७,२८,०००=	२,५९,२०,०००वर्ष
ब्राह्मदिन (सृष्टि) का काल –	= ४,३२,००,००,०००वर्ष

इसे चतुर्युगों में देखें–

१४ मन्वन्तर (१४×७१ चतुर्युग)	= ९९४ चतुर्युग
१५ सन्धियाँ (१५×१ सत्युग)	= ६ चतुर्युग
ब्राह्मदिन (सृष्टि) का काल	=१००० चतुर्युग

यहाँ यह स्पष्ट है कि १५ सन्धियों के काल को स्वीकार किये विना केवल १४ मन्वन्तरों के काल से सृष्टिकाल (अर्थात् ४,३२,००,००,००० वर्षों या १,००० चतुर्युगों) को पूर्ण करना असम्भव है । अतः सन्धिरहित सृष्टिकाल (१,९६,०८,५३,११६ वर्षों) को मानना अशास्त्रीय एवं अवैज्ञानिक है ।

सम्प्रति ब्राह्म प्रथम दिन के सातवाँ वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है । अतः पहले प्रदर्शित संकल्पपाठ में **''सप्तमे वैवस्वते मन्वन्तरे''** अंश को जोड़ने से संकल्प का पाठ इस प्रकार होगा–

''ओ३म् तत्सत् श्रीब्रह्मणः श्वेतवराहकल्पनामके प्रथमदिवसे तद्दिने द्वितीयप्रहरे तदुत्तरार्धे सप्तमे वैवस्वते मन्वन्तरे''।

इसके पश्चात् **''अष्टाविंशतितमे कलियुगे''** का जो पाठ किया जाता है, उसका अर्थ निम्नप्रकार जानें–

सृष्ट्यादि से अभी तक व्यतीत काल की गणना–

अभी तक ६ मन्वन्तरों का काल पूरा बीत चुका है, उसका काल-

६मन्वन्तर×७१ चतुर्युग	=	४२६ व्यतीत चतुर्युग
	=	४२६×४३,२०,००० वर्ष
व्यतीत ६ मन्वन्तरों का पूरा काल	=	१,८४,०३,२०,००० वर्ष
व्यतीत ७ सन्धियों का काल (७×१७,२८,०००-सत्युग)	=	१,२०,९६,००० वर्ष

इस समय अष्टाविंशतितम (२८वाँ) कलियुग
चल रहा है अर्थात् २७ कलियुग अथवा २७ चतुर्युग
बीत चुके हैं। अतः इसका काल इस प्रकार है–

२७×४३,२०,००० वर्ष	=	११,६६,४०,००० वर्ष

२८ वें कलियुग में व्यतीत काल–

सत्युग	=	१७,२८,००० वर्ष
त्रेतायुग	=	१२,९६,००० वर्ष
द्वापरयुग	=	८,६४,००० वर्ष
व्यतीत वर्तमान कलियुग (२०७१ वि०सं०, मार्च- ३०,२०१४ ईस्वी तक)	=	५,११५ वर्ष
व्यतीत सम्पूर्ण सृष्टि काल	=	१,९७,२९,४९,११५ वर्ष

हम पहले ही वर्णन कर चुके हैं कि कलियुग में ४,३२,००० वर्ष होते हैं। उसे ४ से विभक्त करने पर कलियुग के एक चरण व पाद का बोध होगा– ४,३२,००० ÷ ४= १,०८,००० वर्ष। अर्थात् अभी तक कलियुग का प्रथम चरण ही चल रहा है । अतः **''अष्टाविंशतितमे कलियुगे''** पाठ के बाद **''कलिप्रथम चरणे''** का पाठ किया जाता है । अभी तक कलियुग के ५,११५ वर्ष व्यतीत होकर इस समय ५,११६ वाँ वर्ष चल रहा है। अतः **''कलिप्रथमचरणे''** पाठ के बाद **''पञ्चसहस्त्रषोडश-उत्तर-शततमे कलियुगाब्दे''** का पाठ करना चाहिए । अभी तक

सृष्ट्योत्पत्ति से लेकर वर्तमान संवत्सर तक व्यतीत काल को संज्ञाशब्दों से व्यक्त किया। उसे ही अब संख्यावाचक शब्दों में स्पष्ट करते हैं–

''एको वृन्दः सप्तनवतिकोट्यः एकोनत्रिंशत्-लक्षाणि एकोनपञ्चाशत्-सहस्राणि षोडशोत्तर-शततमे सृष्टि संवत्सरे''
इसका अर्थ यह है कि '१९७ करोड़, २९ लाख, ४९ हजार, ११६ वें सृष्टि संवत्सर में' इसके बाद प्रसिद्ध भारतीय संवत्सरों को भी पढ़ने की परम्परा चली आ रही है। वह इस प्रकार है–**''द्विसप्तति-उत्तर-द्विसहस्रतमे वैक्रमाब्दे, एकनवति-उत्तर शततमे दयानन्दाब्दे''** अर्थात् २०७२ वाँ विक्रम संवत्सर और १९१ वाँ दयानन्द संवत्सर चल रहा है। इसके बाद पठनीय संकल्प को आगे प्रदर्शित संकल्पपाठ के अनुसार जानें। यहाँ तो केवल संकल्प के प्रमुख अंश के अर्थ एवं महत्व को जानने व जनाने हेतु विस्तृत रूप से लिखा गया है। संम्पूर्ण संकल्प का पाठ इस प्रकार है–

संकल्प

यजमान- ओ३म् आ वसोः सदने सीद ।

ऋत्विक्- ओ३म् सीदामि।

यजमान- ओ३म् तत्सत्श्रीब्रह्मणः श्वेतवराहकल्पनामके प्रथम दिवसे तद्दिने द्वितीयप्रहरे तदुत्तरार्धे सप्तमे वैवस्वते मन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे पञ्चसहस्र-षोडश-उत्तर-शततमे कलियुगाब्दे एकोवृन्दः सप्तनवतिकोट्यः एकोनत्रिंशत्-लक्षाणि एकोन-पञ्चाशत्-सहस्राणि षोडशोत्तरशततमे सृष्टिसंवत्सरे, द्विसप्तति-उत्तर-द्विसहस्रतमे वैक्रमाब्दे, एकनवति-उत्तर-शततमे दयानन्दाब्दे.........नामकसंवत्सरे, ...अयने, ...ऋतौ, ...मासे, ...पक्षे, ...तिथौ, ...नक्षत्रे प्रातःकाले/सायंकाले भूर्लोके जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्ते.........प्रदेशे...... नगरे, ...ग्रामे, स्वशोभनगृहे यज्ञमण्डपे.........गोत्रोत्पन्नः श्रीमताम् .... महोदयानां पौत्रः, श्रीमताम्........महोदयानां पुत्रः,.......नामाहं श्रीमत्या.........नाम्या धर्मपत्न्या सहितः धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-चतुर्विध-फल-पुरुषार्थ-अवाप्त्यर्थं, सर्वभूतानां सुख-शान्ति-आयुः-आरोग्य-ऐश्वर्य-अभिवृद्ध्यर्थम्, वैदिकधर्म-प्राचुर्यार्थं च इमं.......बृहद्यज्ञं/संस्कारं कारयितुं भवन्तं/भवन्तीं वृणे ।

ऋत्विक् – ओं वृतोऽस्मि/वृताऽस्मि ।

वैदिक परम्परा का संरक्षक

निगम-नीडम् (वेदगुरुकुलम्)

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिषु बुद्धिजीविनः ।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ (मनु०१.९६)

चराचर जगत् में जीवधारी (प्राणी) श्रेष्ठ हैं, प्राणियों में बुद्धिजीवी श्रेष्ठ हैं। बुद्धिजीवियों में मनुष्य श्रेष्ठ हैं और मनुष्यों में वेदवेत्ता, ब्रह्मविद् सर्वश्रेष्ठ हैं।

इस जगत् में मनुष्य सर्वोत्तम प्राणी के रूप में जन्मा है। पर इसका ज्ञान स्वाभाविक न होकर, नैमित्तिक है अर्थात् उसे माता, पिता, गुरु आदि से ही ज्ञान प्राप्त होता है, अन्यथा वह पशुपक्षियों से भी अधिक अधम प्राणी सिद्ध होता। अतः मनुष्य को ज्ञान, विद्या, कलादि की अत्यन्त आवश्यकता होती है। **मनुष्य को मनुष्यश्रेणी में स्थापित करने वाला प्रमुख साधन ही विद्या व ज्ञान कहलाता है।** महर्षि दयानन्द ने भी कहा है कि **"जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें, उस को शिक्षा कहते हैं"** (स्वमन्तव्या०)। **"जिससे ईश्वर से लेके पृथिवीपर्यन्त पदार्थों का सत्य विज्ञान होकर उनसे यथायोग्य उपकार लेना होता है, इसका नाम 'विद्या' है"** (आर्योद्देश्य०)। पर सम्प्रति प्रचलित विद्याविधान से तो विपरीत दुष्परिणाम ही दृग्गोचर हो रहें हैं। इस आधुनिक विद्या में सहृदयता रहित मनुष्य रूपी यन्त्रों के निर्माण की शक्ति अवश्य है, पर वह मानवीय संस्कारोपेत मनुष्य के निर्माण में सर्वथा असमर्थ सिद्ध हुआ है। वैयक्तिक जीवन से लेकर देश एवं विश्वभर के क्षेत्रों में सर्वत्र स्वार्थ, अनाचार, अत्याचार, अधर्म, अन्याय,

अवनीति, अकर्मण्यता, विषयलोलुपता, दुराचार, भ्रष्टाचार, जातिवाद आदि से बीभत्स दुःस्थिति बनी हुई है। माता-पिता, अध्यापक और विद्यार्थी सभी लोग आधुनिक विद्या से केवल धन की ही आशा करते हैं। उसके लिए सभी अपने-अपने मनो-अश्वों को चहूँ दिशाओं में दौड़ाते हैं। पर आज का मनुष्य यह समझ नहीं पा रहा है कि धनादि ऐश्वर्य अपने साध्य नहीं है, न ही वे शाश्वत संपत्ति हैं। आदर्श एवं संस्कारादि विहीन आधुनिक शिक्षा से मनुष्य पथभ्रष्ट होकर नरपिशाच बनता जा रहा है। तत्परिणामतः रक्षक ही भक्षक के रूप में, प्राणदाता (डाक्टर) प्राणान्तक के रूप में, उपकारक अपकारक के रूप में, निर्माता नाशक के रूप में परिणत होते जा रहें हैं।

आक्रामक अंग्रेजियों की कुटिलनीति के कारण ही वेद और ऋषि, मुनि आदि महापुरुषों से विभूषित एवं सर्वविधसुखशान्तियों से सम्पन्न विश्वगुरु भारत आज अत्यधिक विषम एवं विपत्कर परिस्थितियों से आक्रान्त है। परिणामों पर विचार किये विना किया गया कार्य सर्वथा निष्फल और दुष्फल होता है, इसके लिए यह एक बहुत बड़ा उदाहरण है। अब भी भारतीय सचेत होकर धर्म, मानवता, विश्वभ्रातृत्व, संस्कृति, सभ्यता आदि को विनष्ट करने वाले इन भयानक विषम परिस्थितियों को समूल विनाश करने के लिए वेदों की ओर लौटें और सनातन वैदिक संस्कृति तथा पुरातन आर्षपरम्परा के अनुकूल विद्याविधान को अपनायें, जिससे इस देश का पूर्व दिव्य वैभव पुनः देखा जा सकता है।

इसी अनिवार्यता को पहचानकर महर्षि देव दयानन्द सरस्वती ने भारतदेश के पूर्ववैभव को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए वेदों के प्रचार निमित्त अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित किया तथा यावज्जीवन विभिन्न प्रकार के महत् कार्यों को सम्पन्न किया। उन्हीं प्रयत्नों के अन्तर्गत इन्होंने चार गुरुकुलों की भी स्थापना की थी। तत्पश्चात् उन्हीं के अनुयायी स्वामी श्रद्धानन्द आदि अनेक तपःसम्पन्न विद्वानों ने उस गुरुकुल परम्परा को निस्स्वार्थ से अहर्निश पुरुषार्थ कर पुष्पित, पल्लवित किया और उन्नत

शिखर तक पहुँचाया । परन्तु उस प्रकार का प्रयत्न दक्षिणभारत में नहीं हो पाया। तत्परिणामतः भारत के दक्षिण भाग में वैदिक विद्वान्, पण्डित, संन्यासी, वानप्रस्थी, ब्रह्मचारी, प्रचारक, पुरोहित आदि का अभाव रहा है, जिसके कारण विधर्म प्रबल होता जा रहा है । इस अभाव की सम्पूर्ति के लिए और महर्षि देव दयानन्द के संकल्पों को साकार करने एवं आर्षपरम्परा को दक्षिणप्रान्तों में भी पूर्णतः परिव्याप्त करने के महदुद्देश्य से अविभक्त आन्ध्रप्रदेश के मेदक जिला, गज्वेल मण्डल, पिडिचेड़ ग्राम के समीप स्वच्छ, निर्मल, एकान्त, प्रशान्त, वातावरण से युक्त चार एकड़ की भूमि में ३-अप्रैल,२००५ में इस वेदगुरुकुल की स्थापना की गई ।

अत्यन्त सीमित साधनों से प्रारम्भ किया गया यह गुरुकुल ईश्वर के अनुग्रह एवं धार्मिक सज्जनों के सहयोग से स्वल्प काल में ही अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होने में पूर्ण सफल रहा है । इस गुरुकुल में वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, उपवेद, कोष, वेद-लक्षण, वेदाङ्ग, दर्शन, स्मृति, साहित्य, इतिहास, शोधग्रन्थ आदि अनेक विषयक संस्कृत, हिन्दी, तेलुगु एवं अंग्रेजी भाषाओं के सम्पूर्ण साहित्य से आधुनिक पद्धति में सुसज्जित विशाल पुस्तकालय है । इसमें लगभग पांच लाख रुपये से अधिक मूल्यवान् छः हजार से अधिक ग्रन्थ उपलब्ध हैं । एक भव्य एवं सुन्दर यज्ञशाला, ध्यानमन्दिर, छात्रावास, अतिथिगृह, कार्यालय, पाकशाला, भोजनशाला, स्नानागार आदि सभी सुविधायें उपलब्ध हैं । विद्यार्थियों को पुष्टिकारक विशुद्ध सात्विक भोजन दिया जाता है ।

इस समय विविध प्रान्तों से आगत (३०) विद्यार्थी शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त आदि सभी वेदाङ्ग एवं दर्शनादि शास्त्रों का अध्ययन मनोयोग से कर रहें हैं । सभी विद्यार्थी प्रातः ४ बजे से रात के ९.३० बजे तक नियमित दिनचर्या के साथ प्रतिदिन १० घण्टे अध्ययन में संलग्न रहते हैं । प्रतिदिन नियमितरूप से प्रातः-सायम् ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, ध्यान, जप, प्राणायाम, व्यायाम, आसन, लाठी-तलवारबाजी तथा अन्य क्रीडादि करते हैं ।

विद्यार्थियों को शास्त्रीय अध्ययन के साथ-साथ धार्मिक, नैतिक, आध्यात्मिक विषय भी हृदयंगम कराये जाते हैं। इतना ही नहीं देशभक्ति, महापुरुषों का आदर्श जीवन चरित्र, भारतीय विशुद्ध इतिहास आदि पढ़ाये जाते हैं। अध्ययन के साथ अध्यापन, लेखन, प्रवचन आदि कलाओं का भी अभ्यास कराया जाता है। कम्प्यूटर का सम्पूर्ण प्रशिक्षण भी दिया जाता है। गुरुकुल में एक गोशाला भी है। विद्यार्थियों को गोसेवा, गोसंरक्षण की पद्धतियों से अवगत कराया जाता है। विभिन्न विषयों पर प्रतियोगिताएँ आयोजित कर विजेताओं को पुरस्कृत किया जाता है, जिससे उनकी योग्यता अभिवृद्ध होती है और प्रोत्साहन भी। इस गुरुकुल में जात्यादि भेदों से अतीत होकर सभी जिज्ञासुओं को केवल संस्कृत भाषा ही नहीं, अपितु सस्वर वेदपाठ एवं सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय पढ़ाया जाता है।

गुरुकुल के उद्देश्य

१. सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय का अध्ययन-अध्यापन एवं अनुसन्धान।
२. वैदिक विद्वानों का निर्माण।
३. वैदिक धर्म के प्रचारकों तथा पुरोहितों का निर्माण।
४. वैदिक संस्कृति और सभ्यता की रक्षा।
५. वैदिक वाङ्मय एवं वेदानुकूल ग्रन्थों का प्रकाशन।
६. वैदिक आश्रम-धर्म की रक्षा के हेतु वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम की स्थापना।
७. देवीभाषा संस्कृत का तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार-प्रसार करना।
८. अनाथ एवं निर्धन बालकों को आश्रय देकर शिक्षित करना एवं यथासम्भव सहयोग करना।
९. ग्रामीण परिसरों में निश्शुल्क चिकित्सालयों की स्थापना करना।
१०. गोमाता की रक्षा के लिये गोशालाओं की स्थापना करना।
११. प्रमुख नगरों तथा ग्रामों में वैदिक पुस्तकालयों की स्थापना करना।

प्रवेश के इच्छुक विद्यार्थी एवं सहयोग के अभिलाषी गुरुकुल के आचार्य से सम्पर्क करें ।

विशेष सूचना -

इस गुरुकुल को दिये जाने वाले दान पर आयकर अधिनियम 80G के अनुसार आयकर में छूट दी जाती है । दानराशि के चैक या ड्राप्ट **''निगम-नीडम्''** के नाम से भेजे जा सकते हैं। ऑन लाईन में भेजने वाले दाता दूरभाष पर सूचित कर गुरुकुल के खाते में राशि जमा करा सकते हैं-

Nigama Needam, S.B.I (State Bank of India), A/C. No. 10060004635, Br.Mudfort (Secunderabad), Br. No.07111. IFS Code : SBIN0007111. धनादेश (M.0.)इस पते पर भेजा जा सकता है-उदयनाचार्य (अध्यक्ष), निगम-नीडम् (वेदगुरुकुल), महर्षि दयानन्द मार्ग, पिडिचेड, मेदक जिला (तेलंगाणा)- 502 278

दूरभाष सं. 09440721958,07660060749 |

रचयिता के अन्य ग्रन्थ

१. शिक्षाशास्त्रम् (संस्कृत, हिन्दी)	१५०.००
२. पाणिनीयशिक्षा (संस्कृत, हिन्दी)	३०.००
३. हितोपदेशः (संस्कृत, हिन्दी)	७०.००
४. गोदानविधिः (संस्कृत, हिन्दी)	५०.००
५. गोदानविधिः (संस्कृत, तेलुगु)	२०.००
६. वैदिक पर्वपद्धति-नववर्षेष्टि (हिन्दी)	७५.००
७. वैदिक पर्वपद्धति-युगादि (तेलुगु)	७५.००
८. पाणिनीय अष्टाध्यायीसूत्रपाठ (तेलुगु).......	७५.००
९. नया वर्ष कब ?........	१५.००
१०. नूतन संवत्सरं एप्पुडु......	१५.००

११. दिव्यवाणि......... १०.००
१२. अष्टाङ्गयोग (तेलुगु अनुवाद).......

निगम नीडम् (वेदगुरुकुलम्)
इदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु
ओ३म्
वेद
निगम नीडम्
२०६०
२००७
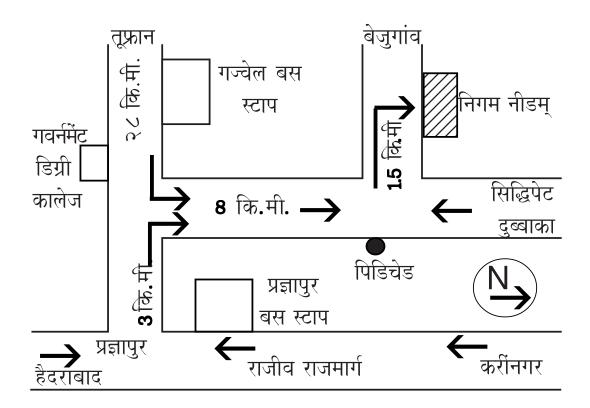
Nigama Needam Vedagurukulam
Pidiched,Gajwel, Medak Telangana-502278
E-mail : nigamaneedam@gmail.com
09440721958